दिगम्बर जैन साधु का

नग्नत्व एवं केशलोंच

[साधु का परिवार]

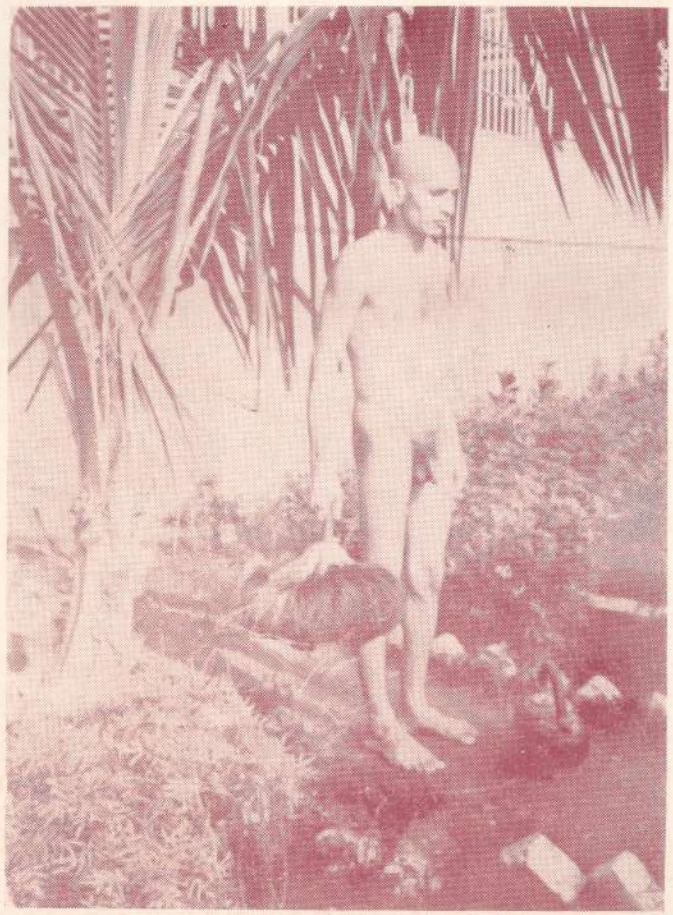

लेखक :

एलाचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती उपाध्यायरत्न

श्री कनकनन्दी जी महाराज

दिगम्बर जैन साधु
का
नग्नत्व एवं केशलोंच

[साधु का परिवार]

लेखक :

एलाचार्य उपाध्याय कनकनन्दी

प्रकाशक :

धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन

निकट-दिगम्बर जैन अतिथि भवन, बड़ौत, मेरठ ।

धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन ग्रन्थांक-32

दिगम्बर जैन साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच

- **लेखक :** ऐलाचार्य, उपाध्याय कनकनंदी जी महाराज।
- **आशीर्वाद :** गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर जी महाराज।
- **सहयोगी :** बालाचार्य श्री पद्मनन्दी जी, मुनि श्री कुमार विद्यानन्दी जी।
  आर्यिका राजश्री माताजी, आर्यिका क्षमाश्री माताजी।
- **सम्पादक मण्डल :** डॉ० (श्रीमती) नीलम जैन (पी० एच० डी०) देवबन्द।
  श्री सुशीलचन्द्र जैन (एम० एस-सी०, भौतिकी) बड़ौत।
  श्री रघुवीर सिंह जैन (एम० एस-सी०, एल० एल० बी०) भूतपूर्व प्रोफेसर, मुजफ्फरनगर।
  श्री प्रभात कुमार जैन (एम० एस-सी, रसायन प्रवक्ता) मुजफ्फरनगर।
- **अध्यक्ष :** श्री प्रेमचन्द मित्तल (एम० ए०) बड़ौत, मेरठ।
  फोन : घर–2309, ऑफिस–2531
- **मन्त्री :** श्री सुदेश कुमार जैन (एम० ए०) बड़ौत।
- **कोषाध्यक्ष :** श्री अनिल कुमार जैन (बी० ए०) बड़ौत।
- **प्रचार मन्त्री :** कु० संगीता जैन (एम० कॉम० बी० एड०) बड़ौत।
- **प्रकाशन संयोजक :**
  श्री योगेश चन्द जैन, प्रैसीडेण्ट प्रेस, मेरठ कैण्ट।
  श्री भीमसेन जैन, बड़ौत।
- **प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :**
  धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन
  कार्यालय : निकट दिगम्बर जैन अतिथि भवन, बड़ौत, मेरठ।
  श्री प्रभात कुमार जैन, 48 कुंजगली, मुजफ्फरनगर।

- सर्वाधिकार सुरक्षित लेखकाधीन

- सप्तम संस्करण : 1991
- **मूल्य :** स्वाध्याय, चिन्तन व ध्यान (मात्र 2·00 रु०)
- **प्रतियाँ :** 5000

- **मुद्रक :**
  प्रैसीडेण्ट प्रेस,
  90, विवेकानन्द पथ, मेरठ कैण्ट।
  दूरभाष : 76708, 73143

आशीर्वाद

"दिगम्बर जैन साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच" नामक यह टैक्सट सातवीं बार प्रकाशित हो रहा है, बहुत खुशी की बात है। इस टैक्सट में अनेक प्रकार के उदाहरण देकर कहा गया है कि दिगम्बर माने क्या, नंगा क्यों रहना चाहिये, आदि बातों का अच्छा कथन किया गया है, इस टैक्सट को भी एलाचार्य मुनि श्री कनकनन्दी जी द्वारा करीब सभी धर्मों की पुस्तकों को पढ़कर लिखा गया है। इसको पढ़कर आप अपना भ्रम अवश्य दूर करिये। इस पुस्तक को लिखने वाले, छापने वाले सबको ही मेरा आशीर्वाद है।

—गणधराचार्य कुन्थुसागर

केशलोंच-दृश्य

यह दृश्य देखकर तो, आती हमें फरूरी।
पर नग्न साधु को तो, यह कृत्य है जरूरी॥

मस्तक के केश अपने, हाथों उखाड़ते हैं।
कर्मों की फौज को वे, मानों पछाड़ते हैं॥

ये काटते फसल हैं, औजार के बिना ही।
क्योंकि ये हैं अहिंसक, औजार की मना ही॥

नाई न ये बुलाते, देने को क्या रखा है।
इन नग्न अकिंचन का, कोई नहीं सखा है॥

यदि एक रोम अपना, धोखे से टूट जाता।
दिन-रात चींखते हैं, पड़ती नहीं है साता॥

खुद खींचिये स्वयं ही, यह एक रोम थोड़ा।
वह रोम टूट करके, हमको बनेगा फोड़ा॥

हमको स्वदेह का है, प्रिय रोम-रोम आना।
लोहा शरीर मुनि का, लेकिन है मोम अपना॥

यह दृश्य देखकर तो, रोमाञ्च हो रहा है।
देखो ये जैन मुनि का, केशलोंच हो रहा है॥

सच्चे श्रमण यही हैं, सन्तों में स्वावलम्बी।
दुनियाँ में अनेकों हैं, पाखण्डी–छली दम्भी॥

अपने शरीर पर ये, कितने अरे! निठुर हैं।
सम्बन्ध आत्मा से, इनके मगर मधुर हैं॥

रखते नहीं ये दाड़ी, या जूट जटायें भी।
छाती नहीं हैं "जूँ" की, घन-घोर घटायें भी॥

चुटकी में नोंचते हैं, मुनि केश शान्ति पूर्वक।
वैराग्य भावनायें, ये भा रहे अभी तक।

मुनि का न कुछ बिगड़ता, होता न बाल-बांका।
ये दूध पिये बैठे हैं, भारतीय माँ का॥

मुनि मुस्करा रहे हैं, ये सिंह वृत्ति वाले।
बस थोड़ी ही देर में, जड़ से उखाड़ डाले॥

अब क्लीन शेव्ड मुखड़ा, मुनि का दमक रहा है।
पूनम का चांद शिर पर, मानो चमक रहा है॥

मुनि धर्म कठिन कितना, इसका ये उदाहरण हैं।
जय बोलिए इन्हीं की, निर्ग्रन्थ की शरण है॥

कवि श्री फूलचन्द "पुष्पेन्दु"
खुरई, सागर, (म० प्र०)

आशीर्वचन

"न धर्मो धार्मिकैर्विना" अर्थात् धर्मात्मा को छोड़कर धर्म का अस्तित्व ही नहीं है। अतः धर्म की सुरक्षा, संवृद्धि तथा प्रचार-प्रसार के लिये धर्मात्माओं की भी सुरक्षा एवं संवृद्धि करनी चाहिये। धर्म सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक होने के कारण धर्मात्मा भी सहज, सरल, स्वाभाविक तथा प्राकृतिक होते हैं। इस सार्वभौम, सार्वकालिक, सार्वदेशीय नियमानुसार प्रत्येक धर्मात्मा व्यक्ति बाह्य कृत्रिमता, बन्धन, भौतिकता को यथाशक्ति यथाभक्ति त्याग करते-करते सहज, प्राकृतिक, निर्विकार, निःसङ्ग अवस्था को प्राप्त करने के लिये पुरुषार्थ करता है। निष्ठा तथा साधना के बल पर जब आगे से आगे बढ़ता ही जाता है, तब सम्पूर्ण बाह्य आडम्बर के साथ वस्त्र का भी त्याग कर देता है या हो जाता है। इसको बालकवत्, यथाजात निर्विकार, सहज नग्न, निर्ग्रन्थ, दिगम्बर प्राकृतिक अवस्था कहते हैं। यह रूप प्रकृति का स्वरूप होने के कारण प्रकृति की प्रत्येक इकाई सहज रूपधारा है। यह रूप सहज होने के कारण सार्वभौम सत्य तथ्य है तथा अनुकरणीय अभिनन्दनीय है। परन्तु

कुछ व्यक्ति स्वयं की अन्तरङ्ग कालुष्य से ग्रसित होकर प्राकृतिक रूप की ही निन्दा भर्त्सना करते हैं तथा प्राकृतिक रूप को विकृत करने के लिए कलह, विद्वेष करते हैं। विश्व में सहज रूप को सब कोई जाने, माने इस दृष्टि को रखकर मैंने अनेक धर्म में मान्य नग्नत्व का वर्णन इस पुस्तक में किया है। इस सप्तम् संस्करण का अर्थभार धर्मात्मा धनपाल सिंह जैन 'सर्राफ' (सोनीपत) व सुरेन्द्र कुमार जैन (पलवल) ने वहन किया है।

--उपाध्याय कनकनन्दी

धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन का उदात्त उद्देश्य

अखिल विश्व के सर्वश्रेष्ठ महान् त्रिकाल अबाधित परमसत्य को धार्मिक आस्था से दार्शनिक-तार्किक पद्धति द्वारा वैज्ञानिक, परीक्षण-निरीक्षण प्रणाली परिप्रेक्ष में परिशीलन, परिज्ञान, परिपालन, साक्षात्कार, संदर्शन, उपलब्धि करके स्वयं को समग्रता से परिपूर्ण परमसत्य स्वरूप परिनिर्माण करना है। अतः इसका सर्वोपरि उद्देश्यः—

"सचवं भगवं" सत्य ही परमेश्वर है।

"सत्यं शिवम् सुन्दरम्"

'सच्चिदानन्दम्'

उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्।

'Truth is God and God is Truth'

धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन के विशिष्ट नियम

1. विवक्षित पुस्तक के प्रकाशन के द्रव्यदाता को उस किताब की दशमांश प्रतियां दी जायेगी।

2. ग्रन्थ प्रकाश (द्रव्यदाता) ग्रन्थमाला का आजीवन सदस्य रहेगा तथा उन्हें ग्रन्थमाला से प्रकाशित प्रत्येक पुस्तकों की पाँच-पाँच प्रति निःशुल्क दी जायेगी।

3. साधु, साध्वी, विशिष्ट विद्वजन और विशिष्ट धर्मायतनों को निःशुल्क दी जायेगी।

4. ग्रन्थमाला से सम्बन्धित कार्यकर्त्ताओं को प्रकाशित पुस्तकों की पाँच-पाँच प्रतियां निःशुल्क दी जायेगी।

5. आर्थिक रूप से असमर्थ धर्म-प्रेमियों को विद्यार्थी एवं शोधरत छात्रों के लिए पुस्तकें निःशुल्क प्रेषित की जायेंगी।

योग्य मार्गदर्शन सबसे आपेक्षित है।

लेखक—उपाध्याय कनकनन्दी

आशीर्वाद—ग० आ० कुन्थुसागर जी

प्रकाशक—धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन, बड़ौत (मेरठ)

पिन : 250611

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ संख्या
1.	दिगम्बर जैन साधु नग्न क्यों ?	 1
2.	अपरिग्रहवाद एवं दिगम्बर जैन साधु।	 9
3.	जैन साधुओं के केशलोंच का कारण।	15
4.	दिगम्बर जैन साधुओं के मूल गुण व उत्तर गुण।	19
5.	साधु का परिवार।	25
6.	पडगाहन विधि।	33

★ उपाध्याय कनकनंदी द्वारा रचित ग्रन्थ।

★ शोध संस्थान के आजीवन सदस्य।

अध्याय 1

दिगम्बर जैन साधु नग्न क्यों ?

लेखक :

एलाचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती उपाध्यायरत्न

श्री कनकनन्दी जी महाराज

सरल, सहज, यथाजात, बालकवत् निर्विकार दिगम्बर जैन साधुओं को देखने मात्र से विभिन्न मनुष्यों में विभिन्न प्रकार के मनोभाव शंका, कुशंका, तर्क-वितर्क उठना स्वाभाविक है। उनके विभिन्न प्रकार के मनोभाव एवं शंकाओं के समाधान के लिये तर्कपूर्ण, नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण से हम कुछ सत्य-तथ्य निम्न प्रकार प्रस्तुत कर रहे हैं—

नग्नत्व, यथाजात, स्वाभाविक, प्राकृत रूप होने के कारण प्रत्येक जीव, भले वह मानव-दानव, पशु-पक्षी हो, जन्म के समय में नग्न रूप को ही धारण करता है एवं परलोक प्रयाण के समय में असहज अप्राकृतिक समस्त बाह्य आडम्बरों को त्याग करके नग्न रूप में ही प्रयाण करता है। परन्तु जन्म के अनंतर अपने मानसिक विकारों से ग्रसित होने के कारण उनको छिपाने के लिये तथा प्राकृतिक प्रकोप ऊष्ण, शीतादि से स्वयं की रक्षा के लिये वस्त्र धारण करता है। वस्त्र धारण का मूल कारण उपर्युक्त होने पर भी साधारणतः मनुष्य विलासिता का शिकार होकर विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य विकारोत्पादक फैशनपूर्ण परिधान प्रयोग में लाता है।

इस छोटी-सी किताब में हमने जैन सिद्धान्त, बौद्ध सिद्धान्त, हिन्दू दर्शन, कुरान एवं बाइबिल से विभिन्न उद्धरण देकर यथा सम्भव सिद्ध करने का प्रयास किया है कि दिगम्बरत्व केवल जैन धर्म के लिये आदर्श नहीं है, परन्तु यह प्रत्येक धर्म के लिये आदर्श है। दिगबरत्व, सर्वोच्च अपरिग्रह, समाजवाद का जीवन्त उदाहरण है। दिगम्बर साधु जन-जन में देश एवं राष्ट्र में विषमता को उत्पन्न करने वाले बहुमूल्य धन-धान्य, सोना-चाँदी, रुपया आदि परिग्रह के साथ-साथ शरीर की सुरक्षाभूत वस्तुओं को भी त्याग करके दुनिया के सामने अपरिग्रहवाद एवं समाजवाद का आदर्श प्रस्तुत करते हैं।

वत्थाजिण वक्केण य अह्वा पत्तादिणा असंवरण ।
णिब्भूसण णिग्गथं अच्चेलक्कं जगदि पुज्ज ॥

(मूलाचार)

वस्त्र, चर्म, वल्कलों से अथवा पत्ते आदिकों से शरीर को नहीं ढकना, भूषण-अलंकार से और परिग्रह से रहित निर्ग्रन्थ वेष जगत में पूज्य अचेलकत्व नाम का मूलगुण है ।

अचेलक का अर्थ निर्ग्रन्थता दिगम्बर=दिक्+अम्बर । दिक् अर्थात् दिशा, अम्बर का अर्थ वस्त्र ।

दिक् एव अम्बरं यस्य सः दिगम्बरः । जिसका वस्त्र दिक् अर्थात् आकाश हो वह दिगम्बर । यहाँ दिगम्बर उपलक्षण मात्र है । केवल वस्त्र रहित होने से कोई दिगम्बर नहीं होता । जैसे गाय, बैल, पक्षी, नारकी, पागल आदि । दिक् के समान अन्तरंग व बहिरंग स्वच्छ, निर्मल व्यापक निःसंग रूप को दिगम्बर कहते हैं । उसका दूसरा नाम निर्ग्रन्थता है । निर्ग्रन्थता का अर्थ क्रोध-मान-माया-लोभ, अविद्या कुसंस्कार काम आदि अन्तरंग ग्रंथि तथा धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सम्पत्ति, विभूति आदि बहिरंग ग्रंथि से जो विमुक्त है उसको निर्ग्रन्थ कहते हैं ।

अशक्य धारणं चेद जन्तुनां कातरात्मनाम् ।
जैनं निस्संगता मुख्यं रूपं धीरैं निषेव्यते ॥

(आदिपुराण)

जिनेन्द्र भगवान के अलौकिक, अतिश्रेष्ठ, सहज-सरल प्राकृतिक बालकवत् निर्ग्रन्थ रूप प्राकृतिक एवं सार्वभौमिक स्वरूप होने से इसका महत्व प्रत्येक युग में प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में पाया जाता है ।

स्वयं महात्मा बुद्ध कहते हैं कि मैं पहले नग्न निर्ग्रन्थ रहा, अनिश्चित विहार किया, हाथ में आहार किया है, अनेक दुरूह (कठिन) तपश्चरण किया है । इससे सिद्ध होता है कि स्वयं बुद्ध निर्ग्रन्थ थे, परन्तु यह दिगम्बर मार्ग (श्रमण मार्ग) कठिन होने से इस मार्ग को छोड़कर उन्होंने मध्यम मार्ग को अपनाया ।

(त्रिपिटक से उद्धृत)

तिशारव-वश्र धम्न पदत्त कथा में लिखा है कि, एक श्रेष्ठी के भवन में 500 दिगम्बर जैन साधुओं ने आहार ग्रहण किया था । **'महावग्ग'** से विदित होता है कि वैशाली में दिगम्बर जैन साधुओं का विहार होता था । महा परिनिर्वाण सूत्र में भी

दिगम्बर साधु का उल्लेख पाया जाता है । **विनय पिटक** में भी दिगम्बर साधु के विहार का उल्लेख है ।

वैदिक साहित्य में भी प्राचीनतम ऋग्वेद में नग्न साधु को 'वातरशना'' शब्द द्वारा बताया है ।

''मुनयो वातरसनाः पिशंगा बसते मला''

(ऋग्वेद मंडल 10-2-1362)

यजुर्वेद में महावीर भगवान को नग्न बताते हुए उनकी उपासना को संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय रूप रात्रि, भय तथा धन मद, शरीर मद आदि का निवारक कहा है ।

''आतिथ्य रूपं मासर महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपासदामेत त्रिस्त्रो रात्रीः सुराः सुतः ॥

(यजुर्वेद अध्यात्म 19 मंत्र 14)

एकाकी निःस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्म निर्मूलने क्षमः ।

(भर्तृहरि शतक)

हे शम्भो ! मैं कब अकेला, कामनारहित, शांत, करपात्री (हाथ में भोजन करना) दिगम्बर और बन्धन निर्मूलन करने वाला होऊँगा ।

श्रमण वातरशना (निर्ग्रन्थ) आत्मविद्याओं में विशारद होते हैं ।

मुण्डी नग्नो मयूराणां पिच्छीधारी महाव्रतः । मुण्डीत, नग्न, मयूर पिच्छी धारी महाव्रतधारी मुनि होते हैं ।

''नग्गण्ठेसु पिमे करे वियापट्टाहोहंति''

(अशोक स्तम्भ)
(दिल्ली फिरोजशाह कोटला शिलालेख)

कटि सूत्रं सु कौपीनं दंडं वस्त्रं कमण्डलु ।
सर्वमप्सु विसन्याय जातरूप धरश्चरेत् ॥

(नारद परिव्राजक उपनिषद)

कटिसूत्र, कौपीन (लंगोट) दण्ड, वस्त्र, कमण्डलु को जल में विसर्जन करके जात रूप अर्थात् नग्न रूप को धारण करके विचरण करना चाहिए।

हमारे इस्लाम वाले धर्म बन्धुओं, देखिये, शायर जलालुद्दीन ने दिगम्बर नग्न पद को दिव्य ज्योति से अलंकृत बताते हुए कहा है कि वस्त्रधारी व्यक्ति की दृष्टि तो धोबी की ओर रहती है—

"मस्त बोला मुहतसिब से काम जा होगा क्या नंगे से तु ओहदा बरा है। नजर धोबी पै जमापोस की, है तजल्ली जेवेर उरितातंनी।"

नग्न दरवेश तर्किक से कहता है-अरे भाई, तू जा और अपना काम कर, तू दिगम्बर साधु नहीं बन सकता। वस्त्र पहनने वाले की दृष्टि सदा धोबी की ओर रहती है। दिगम्बर की शोभा दैवी प्रकाश रूप है या तो तुम नग्न दरवेशी से कोई सम्बन्ध नहीं रखो अथवा उनके सदृश्य दिगम्बर और स्वीधान बन जाओ। यदि तुम पूर्णतया दिगम्बर नहीं बन सकते तो अपने वस्त्रों को थोड़े परिमाण में रखो।

आज से 300 वर्ष पूर्व शाहजहाँ बादशाह के राज्य में मुस्लिम सूफी फकीर मुहम्मद अली नग्न रूप में विहार करता था। उसका मजार दिल्ली की जामा मस्जिद के बायें भाग में है। उसका कहना था कि परमात्मा जिस पर दोष देखता है, उसे वस्त्र पहना देता है। किन्तु जो निर्दोष है, उसे नग्न ही रहने देता है।

पोशाद लिबास हरकरा एबेदीक।
बे एबारा जलबास उरियानी दाद॥

(अब्दुल कासिम)

जिलानी नामक मुस्लिम साधु नग्न दिगम्बर रहा करते थे।

The higher saints of Islam called Abduls went about Perfectly naked.

["Mysticism and Magic in Turky" by Miss buecy M. gonet]

अब देखिये ईसाई धर्म वालों को। यहाँ **नग्न** साधु का महत्व बाइबिल में लिखा है—'आदम तथा उनकी पत्नी (ईव) नग्न उत्पन्न हुए थे तथा उद्यान में नग्न रहते थे। उसके मन में लज्जा ने कोई स्थान नहीं बनाया था। जब उन्होंने निषिद्ध के वृक्ष के फल को खाया तो उन्हें यह ज्ञान होने लगा कि वे नग्न हैं—

And they (Adam and Eve) were both naked the man and his wife were not ashamed. (Gensis 11-25)

When they eat the fruit of the forbidden tree, they felt and knew they were naked. (Idid 11-7-11)

बाइबिल में यह भी लिखा है कि "उसने अपने वस्त्र भी अलग कर दिये और सेमुअल के समक्ष इस प्रकार की घोषणा की तथा दिन-रात दिगम्बर रहा। उस पर उन लोगों ने पूछा, क्या साल भी पैगम्बरों से है।

And he stripped his clothes also and prophesised before Samualin Samuel in the like manner and they lay down naked.... all day and night. Wherefore they said "Is saul also among the porphets" Samuel XIX 24.

उसी समय प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसाइया से कहा जा तू भी अपने कपड़ों को दूर कर दे और जूतों को उतार डाल। उसने ऐसा ही किया। वह नग्न हो नंगे पैर फिरने लगा।

At the same time the lord spoke the Isaiah the son of Amoj saying go and loose the sack clothes from off the loins and they Put off their shoes from the foot And he did so walking naked and bare footed. (Isaiah XX-2)

ईसाई साधु पीटर ने लिखा है, "हमें अपने पास कुछ भी नहीं रखना चाहिये। परिग्रह हम सबके लिये पापरूप है। इसका जैसे भी हो, त्याग करना है, हमें पापों से बचना है।"

"To all of us possession are sins....the deprivation of these in whatever way it may take place is the removal of sin"

—Clamertine Homities

शंकराचार्य ने "विवेक चूडामणि में" लिखा है कि जिस योगी के पास दिशारूपी वस्त्र होते हैं, अर्थात् दिगम्बर होते हैं। (जिन्हें वस्त्रों को धोने की जरूरत नहीं रहती, सुखाने की आवश्यकता नहीं रहती) वह श्रेष्ठ अवस्था में यह जीतपूर्ण निराकुल ब्रह्मदर्शन जनित आनंद प्राप्त करने में समर्थ होता है।

श्री रामकृष्ण कथामृत में लिखा है कि रामकृष्ण ने परमहंस अवस्था धारण की थी।

जागने पर भक्तों ने देखा कि प्रभात हो चुका है। रामकृष्ण बालक के समान दिगम्बर नग्न है, जिसके शरीर पर एक धागा मात्र भी नहीं। उक्त स्वामी जी ने अपने अश्वनी कुमार दत्त से कहा था—जब मैं सभी भौतिक वस्तुओं को भूल जाता हूँ, उस समय वस्त्र भी छूट जाता है।

आरोह स्वरथे पार्थ, गाण्डीवं स्वकरे कुरु।
निर्जिता मेदिनी मन्ये, निर्ग्रन्थो यस्य सम्मुखे।

(महाभारत)

जब अर्जुन युद्ध के लिये तैयार हो रहे थे, उस समय एक नग्न दिगम्बर मुनिराज आ रहे थे। कृष्ण ने मुनिराज को देखकर कहा—अरे अर्जुन! अब क्या देखता है, शीघ्र रथ पर सवार हो, गाण्डीव को हाथ में ले। देख, यह अपने समक्ष निर्ग्रन्थ मुनिराज हैं, अभी युद्ध करने से मैं मानता हूँ कि पृथ्वी की विजय तुम्हारे हाथ में है।

पद्मिनी राजहंसश्च निर्ग्रन्था च तपोधना।
यस्मिन् क्षेत्रे विचरन्ति सुभिक्षं तत्र निश्चयः॥

सुलक्षणी पद्मनी स्त्री, राजहंस, निर्ग्रंथ तपोधन जिस क्षेत्र में विचरण करते हैं, वहाँ निश्चय से सुख, शांति, सुभिक्ष होता है।

इससे सिद्ध होता है कि निर्ग्रन्थ रूप शुभ सूचक भी एवं मंगलमय है।

"नग्नत्वं सहजं लोके विकारो वस्त्र वेष्टितम्"

(यशस्तिलक चम्पू)

नग्नत्व विश्व में सहज रूप है। शरीर पर वस्त्र पहनना अपने विकार को ढांकना है। जब मनुष्य उत्पन्न होता है, तब नग्न ही रहता है। बाल्यावस्था में भी नग्न रहता है, बालक की नग्नता को देखकर सब लोग प्रसन्न होते हैं। बालक कभी स्वयं की नग्नता के कारण किसी प्रकार लज्जा का अनुभव नहीं करता। कपड़ा पहिनने की इच्छा नहीं रहती है, यहां तक की कपड़ा पहनाने से बच्चे रोते भी हैं और कपड़ा फाड़कर फेंक भी देते हैं। वह निर्विकार रूप से घूमता फिरता है। उसको सब कोई लाड़ प्यार से खिलाते पिलाते हैं। परन्तु माता-पिता लोग गर्मी, सर्दी, डाँस, मच्छर आदि से बालक की रक्षा करने के लिये बालक को कपड़ा पहनाते हैं। जब वह बड़ा होता है। तब वह संसार-प्रपंच में, मोहमाया में फंसता है। अपने विकार भाव को छिपाने के लिये कपड़े को आवश्यक मानता है।

इससे सिद्ध होता है कि कपड़े का मूल उद्देश्य कामविकार को ढकना व शरीर की रक्षा करना है।

परन्तु निर्ग्रन्थ मुनि का बालकवत् सरल विकार भाव से रहित होने से कपड़े की कोई आवश्यकता नहीं रहती। वे शरीर को समस्त अनर्थ का मूल कारण एवं परद्रव्य मानकर शरीर का ममत्व भाव भी त्याग देते हैं। इसलिये शरीर-रक्षा के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। राग, मोह, काम भाव, एवं भौतिक सुन्दरता की उपासना से दूर होने के कारण श्रृंगार के लिये भी वस्त्र धारण नहीं करते हैं। वे सोचते हैं कि हम नंगे आये और नंगे ही जायेंगे। फिर बीच में वस्त्र धारण करके दंगा करने की क्या आवश्यकता है।

वे अन्तरंग बहिरंग परिग्रह त्याग करने के कारण वस्त्र का भी त्याग कर देते हैं। इसका विस्तृत वर्णन इस पुस्तक के अपरिग्रह महाव्रत के वर्णन में आया है वहाँ से देखिये (पृ० नं० 9)

कपड़े के लिये पैसा (अर्थ) चाहिये। पैसा तो साधु अपने पास नहीं रखते हैं। पैसे के लिये याचना करनी पड़ेगी, परन्तु याचना करना स्वाभिमानी मुनि के लिये मरण से भी दुःखदायी लगता है। कहा भी है कि—

माँगन मरन समान है, मत माँगो कोई भीख।
माँगन से मरना भला, यह सद् गुरु की सीख॥

घोर वीर तप करत तपोधन, भये क्षीण सूखी गल बाँही।
अस्थि चाम अवशेष रहो, तन नसाँ-जाल झलकै तिस माहीं॥
औषधि असन पान इत्यादिक, प्राण जाउ पर याचत नाहीं।
दुर्द्धर अयाचित व्रत वारे, करे न मलिन धरम परछाहीं॥

(बाईस परिषह)

जब मुनि प्राणघातक रोग, तृष्णा होने पर भी याचना नहीं करते हैं, तब सामान्य कपड़े के लिये जो कि प्राण धारण के लिये नितान्त आवश्यक नहीं है, उसको याचना नहीं कर सकते हैं।

इसी प्रकार जो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह की आदर्श मूर्ति हैं, उन सबको आदर-पूज्यता की दृष्टि से देखना चाहिए। उनको देखकर घृणा नहीं करनी चाहिये।

अधमा धनमिच्छन्ति, धनं मानं च मध्यमा ।
महान्तो मानमिच्छन्ति, मानो हि महताँ धनम् ॥
चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआ बे परवाह ।
जिन्हें कुछ नहीं चाह है वे नर शहनशाह ॥
यतो धर्म स्ततो जयः । सत्यमेव जयते ।

—कनक नन्दी द्वारा लिखित
धर्म ज्ञान एवं विज्ञान से उद्धृत

पाणिः पात्रं पवित्र भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्य मन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्वल्प मुर्वी ।
येषां निः संगतांगीकरणपरिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते :
धन्या संन्यस्त दैन्य व्यतिकार निकरा कर्म निर्मूलयंति ॥

वैराग्य शतक ॥47॥ पृष्ठ 49

वे धन्य हैं, जिनकाहाथ ही पवित्र पात्र है, भ्रमण से प्राप्त शिक्षा ही अक्षय भोजन है । लम्बे चौड़े दिशा ही जिनका वस्त्र है, पृथ्वी ही जिनकी शय्या है, अंतकरण में से अनाशक्ति से जो हमेशा संतुष्ट रहते हैं, और दीनता त्याग करके जन्म परम्परा से प्राप्त कर्मों का नाश करते हैं ।

धन्यानां गिरीकंदरेनिवासतांज्योतिः परं ध्यायता–
मानन्दाश्रु जलं पिवन्ति शकुना निःशङ्कमङ्केशयाः ।
अस्माकं तु मनोरथो पर चित प्रासादवापीतट ।
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते

वैराग्य शतक ॥88 ॥ पृष्ठ 69

वे धन्य हैं जो गिरिकंदरों में रहते हैं और परब्रह्म ज्योति का ध्यान करते हैं । जिनके आनन्दाश्रुओं का पक्षी समूह उनके गोद में बैठकर निःशंक पान करते हैं । मनोरथ से बने हुए पागलपन कल्पना के क्रीड़ोद्यान में विलास करने वाले हम निष्कारण आयु बिता रहे हैं ।

अध्याय 2

अपरिग्रहवाद एवं दिगम्बर जैन साधु

दिगम्बर जैन साधु, 28 मूलगुणों को दीक्षा के समय में प्रतिज्ञा रूप से स्वीकार करके पूर्ण जीवन अक्षुण्ण निरतिचार पालन करने में दत्तचित्त रहते हैं । वे मूलगुण निम्न प्रकार हैं—

वदसमिदिय रोधो, लोचो, आवासयमचेलमण्हाणं ।
खिदिसयणमदंतवणं, ठिदि भोयणमेयभत्तं च ॥
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।

(1) अहिंसा (2) सत्य (3) अचौर्य (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह रूप पञ्च महाव्रत, पाँचसमिति—(1) ईर्या समिति (2) भाषा समिति (3) एषणा समिति (4) आदान निक्षेपण समिति (5) उत्सर्ग समिति ।

पाँच इन्द्रिय निरोध, केशलोंच, षट् आवश्यक, नग्नत्व, अस्नान, भूमिशयन, अदंत धोवन, खड़े होकर भोजन ग्रहण, दिन में एक बार भोजन करना, इस प्रकार ये 28 मूलगुण होते हैं । ये मूलगुण सम्यग्ज्ञानी जिनेन्द्र भगवान ने मुनियों के लिये बतलाये हैं । उपर्युक्त मूलगुण में अपरिग्रह भी एक मूलगुण होता है । जिसका वर्णन निम्न प्रकार प्रस्तुत है—

अन्तरङ्ग बहिरङ्ग सर्व परिग्रह त्यागं ।
अपरिग्रह महाव्रतं सर्व सुखदायकम् ॥

14 प्रकार का अन्तरङ्ग परिग्रह एवं 10 प्रकार का परिग्रहबहिरङ्ग त्यागने को अपरिग्रह धर्म कहते हैं । यह अपरिग्रह महाव्रत सर्व सुखदायक है ।

अन्तरङ्ग 14 प्रकार का परिग्रह—(1) मिथ्यात्व (2) क्रोध (3) मान (4) माया (5) लोभ (6) हास्य (7) रति (8) अरति (9) शोक (10) भय (11) जुगुप्सा (12) स्त्री वेद (Female Sex) (13) पुरुषवेद (14) नपुंसक वेद ।

बहिरङ्ग 10 प्रकार का परिग्रह—(1) क्षेत्र—खेत–जमीन (2) वस्तु-मकान (3) हिरण्य–चाँदी (4) स्वर्ण—सोना (5) धन—पशु सम्पत्ति (6) धान्य-अनाज आदि (7) दासी—नौकरानी (8) दास—नौकर, (9) कुप्य—वस्त्र (10) भाण्ड—बर्तन ।

परिग्रह का भयंकर परिणाम—जिस प्रकार ग्राह (मगरमच्छ या घड़ियाल) मनुष्य को पकड़कर जल में डुबा देता है एवं खा लेता है उसी प्रकार उपर्युक्त 24 प्रकार का परिग्रह जीव को पकड़कर संसार सागर में डुबाकर जन्म मरणादि दुःख को देते हैं। सम्पूर्ण 343 घन राजू प्रमाण विश्व में स्थित परिग्रह के भेद केवल 10 हैं परन्तु आश्चर्य की बात है कि साढ़े तीन हाथ प्रमाण इस क्षुद्र शरीर में 24 परिग्रह हैं। व्यवहार में एक दुष्ट ग्रह के कारण मनुष्य को बहुत ही कष्ट मिलता है, तब जिनके पीछे महादुष्ट 24 परिग्रह लगे हैं उनको कितना कष्ट मिलेगा ? विचार करना चाहिये। एक ग्राह (घड़ियाल) यदि मनुष्य को पकड़कर निगल सकता है तो 24 प्रकार के परिग्रह जीव को पकड़कर क्यों नहीं निगल सकते हैं ? अर्थात् निश्चित रूप से निगल जायेंगे ।

मूर्च्छा परिग्रहः—बाह्य वस्तु के प्रति जो मूर्च्छा अर्थात् ममत्व परिणाम है, वही मुख्य अन्तरङ्ग परिग्रह है। मूर्च्छा-ममत्व होने के कारण शरीर भी परिग्रह धारी है। तीर्थंकर केवली के समवशरण आदि बाह्य विश्व की सबसे अधिक विभूति होते हुए भी वे परिग्रहधारी नहीं है। क्योंकि वे, मूर्च्छा, ममत्व, इच्छा से रहित हैं। इच्छा एक प्रकार की अलौकिक अग्नि है, क्योंकि अग्नि ईंधन मिलने पर ही बढ़ती है, ईंधन के अभाव से अग्नि बुझ जाती है परन्तु यह इच्छा रूपी अग्नि वैभव के अभाव में वैभव को प्राप्त करने के लिये प्रज्ज्वलित होती है एवं मिलने पर और अधिक प्रखर रूप से प्रज्ज्वलित होती है।

बढ़त-बढ़त सम्पत्ति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय ।
घटत-घटत फिर न घटे, घटे तो कुम्हलाय ॥

सम्पत्ति रूपी पानी जितना-जितना बढ़ता जाता है, उतना मन रूपी कमल बढ़ता ही जाता है परन्तु कमल बढ़ जाने के बाद यदि पानी घट जाये तो उस अनुपात से कमल की नाल कम नहीं होती है जिसके कारण आधार के अभाव में कुम्हला जाता है। उसी प्रकार मन (इच्छा) जितनी धन सम्पत्ति बढ़ती है, उससे भी अधिक प्राप्त करने के लिये लालायित हो जाता है। किन्तु धन कम होने पर इच्छा कम नहीं होती है। जिससे मनुष्य की इच्छा भंग हो जाती है और मनुष्य को अकथनीय मानसिक वेदना होती है।

इच्छा अग्नि है। वैभव घी है, इच्छा रूपी अग्नि को शांत करने के लिये यदि वैभव रूपी घी डालेंगे तो इच्छा रूपी अग्नि शान्त नहीं होगी, बल्कि अधिक-अधिक बढ़ती ही जायेगी। इसलिये इच्छा रूपी अग्नि शान्त करने के लिये बाह्य परिग्रह धन सम्पत्ति जितना-जितना कम करोगे, उतनी-उतनी इच्छा रूपी अग्नि कम होकर मानसिक शान्ति मिलेगी।

कनक-कनक ते सौ गुनी, मादकता अधिकाय ।
या खाय बौराय नर, तो पाय बौराय ॥

कनक—धतूरा (विषाक्त फल) से कनक–स्वर्ण (धन सम्पत्ति) मादकता में सौ गुनी अधिक है क्योंकि धतूरा फल खाने पर ही नशा चढ़ता है, परन्तु कनक अर्थात् धन को प्राप्त करते ही नशा चढ़ जाता है। अर्थात् मनुष्य अधिक धन का इच्छुक गर्वी एवं व्यसनी बन जाता है।

दुरर्ज्येनासुरक्षेण नश्वरेण धनादिना ।
स्वस्थं मन्यो जनः कोऽपि ज्वरवानिव सर्पिषा ॥ इष्टोपदेश ॥13॥

धन-सम्पत्ति अर्जन करना अत्यन्त कष्ट साध्य है। धनार्जन के लिये मनुष्य भयंकर जंगल में जाता है, अथाह समुद्र में डूबता है, अपार सागर को पार करके, प्रिय कुटुम्ब को छोड़कर अपरिचित देशान्तर को जाता है। मालिक के सामने नाचता है, गाता है, चापलूसी करता है, दीन-हीन के सदृश मालिक की सेवा करता है। धन सम्पत्ति के लिये चोरी, डकैती, काला बाजारी (दो नम्बर का काम), शोषण आदि भी करता है, जिससे महापाप का बंध होता है। धन उपार्जन के बाद भी शान्ति नहीं मिलती है, उसकी सुरक्षा के लिये दिन-रात चिंता करता है। धन सम्पत्ति को छिपाता है। ताले के ऊपर ताले लगाकर रखता है। असुरक्षा के भय के कारण भयभीत रहता है। कोई अपहरण करे तो उसके विरोध में लड़ाई भी करता है। विविध प्रकार की सुरक्षा करने पर भी पुण्य के अभाव से धन नहीं रहता है। इस प्रकार आय में दुःख, व्यय में दुःख, रक्षा में दुःख। इस आदि-मध्य-अन्त में दुःख स्वरूप धन को प्राप्त कर सुख मानता है जैसे ज्वरग्रसित रोगी घी पीकर सुख मानता है। ज्वर से ग्रसित रोगी का घी पीने पर रोग बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं, उसी प्रकार धन से संताप बढ़ेगा ही, घटेगा नहीं।

अर्थिनो धनंप्राप्य धनिनोऽप्यवितृप्तिः ।
कष्टं सर्वेऽपि सीदन्ति परमेको मुनिः सुखी ॥

(आत्मानुशासन)

धन का इच्छुक धन को प्राप्त करके एवं धनी अतृप्ति के कारण दुःखी रहते हैं। परन्तु जिसने समस्त आशा को अपना दास बना दिया है, वह केवल महामुनि ही सुखी हैं।

आशा दासी कृतयेन तेन दासीकृतं जगत् ।
आशायाश्च भवेत् दासः सः दासः सर्व देहिनाम् ॥

जिसने आशा को अपना दास बना दिया, उसने सर्व जगत को दास बना दिया। जो आशा का दास बन गया, वह सर्व जीवों का दास बन गया।

आशा गर्तः प्रति प्राणी यस्मिन् विश्वमणूपमम् ।
कस्य किं कियादायाति वृथैव विषयैषिता ॥

(आत्मानुशासन)

एक-एक जीव का आशा रूपी गड्ढा इतना विशाल है कि उसमें यदि इस सम्पूर्ण विश्व को डाला जाय तो भी वह विश्व उस गड्ढे में एक अणु के समान दृष्टिगोचर होगा। यदि एक जीव की आशा के लिये यह सम्पूर्ण विश्व भी अत्यन्त कम है तब विश्व में स्थित अनंतानंत जीवों के लिये कितना भागांश मिलेगा ? इसलिये विषय की इच्छा करना नितांत भूल है। यह आशा रूपी गर्त (गड्ढा) अत्यन्त विचित्र है। क्योंकि एक गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालते जायेंगे, वह गर्त उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा। किन्तु आशा रूपी गर्त में जितना-जितना द्रव्य डालेंगे, उतना-उतना आशा का गड्ढा बढ़ता जायेगा, कम नहीं होगा अर्थात् भरेगा नहीं बढ़ता जायेगा। जितना-जितना कम करते जायेंगे, उतना-उतना पूर्ण होता जायेगा, और पूर्ण आशा को निकाल देने से गड्ढा पूर्ण रूप से भर जायेगा, यही इस गड्ढे की विचित्रता है। इसलिये आशा की पूर्ति आशा त्याग से ही होती है, आशा करने से नहीं होती है।

नग्नत्व का कारणः—

अपरिग्रह के गुणों का विचार करके प्रबुद्ध, विवेकी, सुख-शांति के इच्छुक जीव अन्तरंग एवं बहिरंग परिग्रह का त्याग करते हैं। वे अपने शरीर का भी त्याग करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। बाह्य परिग्रह के साथ विकार को छिपाने योग्य श्रृंगार के उपकरण (वस्तुयें) शरीर के सुरक्षाभूत सम्पूर्ण वस्त्रों का त्याग करके बालकवत् सरल-सहज, अन्तरंग-बहिरंग ग्रंथी से रहित यथाजात रूप निर्ग्रंथ (नग्न) हैं। इस रूप को धारण करके आत्मोन्नति के लिये तत्पर हो जाते हैं। नग्नत्व व्यावहारिक अपरिग्रहवाद का ज्वलन्त उदाहरण है।

समाजवादी नेता केवल भाषण करते हैं, किन्तु पूर्ण रूप से अपरिग्रहवाद को जीवन में नहीं उतारते हैं। परन्तु दिगम्बर साधु केवल भाषण ही नहीं करते हैं, किन्तु आचरण में भी विश्व के सामने अनुकरणीय-परमोत्कर्ष आदर्श स्थापित करते हैं। इस आदर्श का अनुकरण करके साम्यवादी, अपरिग्रहवादी, समाजवादी मनुष्य को भी यथाशक्ति उस आदर्श को जीवन में उतारना चाहिये।

वर्तमान आधुनिक दुनिया में अपरिग्रहवाद के महत्व से सभी अवगत हैं, एवं उसके आदर्श पर सबको अभिमान भी है। कार्लमार्क्स, लेनिन आदि सामाजिक नेताओं ने अपरिग्रहवाद के महत्व का अनुभव करके उसका स्थापन-प्रचार-प्रसार किया है। परन्तु जैन धर्म का साम्यवाद अन्तःकरणपूर्वक सरल-सहज स्वप्रवृत्ति से होता है। यदि देश, राष्ट्र, समाज को सहअस्तित्व, विश्व मैत्री, समता भाव चाहिये एवं विषमता की खाई को कम करना है, तो अपरिग्रहवाद को शीघ्रातिशीघ्र स्वेच्छापूर्वक पालन करना चाहिये।

ईसा मसीह ने अपने उपदेश में प्रतिपादित किया था कि, एक सुई के छेद से कदाचित् (अनहोनी जैसी होनी) हाथी निकल सकता है, परन्तु परिग्रहधारी मनुष्य ईश्वरीय राज्य के विशाल दरवाजे में प्रवेश नहीं कर सकता है अर्थात् परिग्रह स्वर्ग-मोक्ष प्राप्ति के लिये, सुख शांति के लिये प्रतिरोधक स्वरूप है।

वर्तमान में देश-विदेश में साम्यवाद का गुणगान होते हुये भी उसको आचरण में नहीं अपनाने के कारण विषमता फैल रही है। दुनिया में खाद्य सामग्री एवं जीवनोपयोगी सामग्रियों का अभाव होने पर अपरिग्रह रूपी बाढ़ (तट) के अभाव में समीचीन वितरण नहीं होता है। इसके कारण ही आज देश व समाज में कोई करोड़पति हैं तो कोई एक रोटी को भी मुहताज है, कंगाल है। एक स्वादिष्ट गरिष्ठ भोजन करते-करते मरण को प्राप्त होता है, तो एक भोजन के नहीं होने से भूखा ही मरण को प्राप्त होता है। एक अतुल वैभव की चिन्ता से दुःखी है, तो एक धन नहीं होने से दुःखी है। क्या इसमें हमारे समाज के पूंजीपति कारण नहीं हो सकते हैं ?

यदि दिगम्बर जैन साधु के सदृश पूर्ण रूप से परिग्रह त्याग करना सम्भव नहीं है तो नितान्त आवश्यक जीवनोपयोगी सामग्री रखकर अन्य वस्तु का त्याग करना चाहिये, उसको अपरिग्रह अणुव्रत कहते हैं। अपरिग्रह अणुव्रत प्रत्येक आदर्श नागरिक के लिये परमावश्यक है।

उ० ए० कनक नन्दी द्वारा लिखित धर्म, ज्ञान
एवं विज्ञान से उद्धृत

यत्र स्याद्वाद सिद्धान्तो, यत्र वीरो दिगम्बरः ।
तत्र श्रीविजयो भाति ध्रुवानन्द ध्रुवादरः ॥
तरन-तारन गुरुदेव

ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं ।
आप तरे और परको तारैं निष्प्रही निर्मल हैं ॥
ऐसे···· ····

तिल-तुष मात्र शेष नहीं जाके,
ज्ञान ध्यान गुण बल है । ऐसे·····
शान्त दिगम्बर मुद्रा जिनकी निष्प्रही निर्मल हैं । ऐसे····

भागचन्द तिनको नित चाहे, ।
ज्यों कमलनि को अलि है, । ऐसे·····

आकिंचनस्य दान्तस्य शान्तस्य समचेतसमचेतसः ।
सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशाः ॥95॥ पृष्ठ 72 वैराग्य शतक

आकिंचन (अपरिग्राही) संयमी, शांत और शत्रु मित्र में समान विचार रखने वाले, हमेंशा संतुष्ट रहने वालों के लिए सब दिशा आनंद देती हैं ।

भोगे रोगभयं, कुलेच्युतिभयं, वित्ते नृपालाद् भयं ।
माने दैन्यभयं, बले रिपुभयं, रुपे जराया भयम् ।
शास्त्रेवादिभयं. गुणे खलभयं, काले कृतान्ताद् भयं ।
सर्वं वस्तु भयान्वितं, भुविनृणां वैराग्य पदं निर्भयम् ॥32॥ पृष्ठ 41

भोग में रोग का भय, उच्च कुल में जन्म होने के बाद उस कुल से अधःपात का भय, धनवान होने के बाद राजा का भय, मन में दीनते का भय, बलवान होने के बाद शत्रुओं का भय, सौंदर्यवान होने के बाद वार्धक्य का भय, शास्त्र ज्ञान होने के बाद वादविवाद का भय, विनयादि गुण होने पर–दुष्टों का भय, निरोगी शरीर होने के बाद भी यमराज का भय, कहने का तात्पर्य यह है कि—इस संसार में सब पदार्थों में भय है । सिर्फ एक मात्र वैराग्य ही निर्भय का स्थान है ।

अध्याय 3

"जैन साधुओं के केशलोंच का कारण"

दिगम्बर जैन साधुओं की क्रिया साधारण मानव की क्रिया से असाधारण, विपरीत और अलौकिक होती है । पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है—

"एकान्त विरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः "अर्थात् संसार शरीर, भोग, राग-रंग, मोह, परिग्रह आदि से सर्वथा रहित स्वरूप मुनियों की वृत्ति अलौकिक होती है । जैसे–साधारण प्रजा राग–मोहादि में आसक्त होकर वस्त्र धारण करते हैं तो साधु नग्न रहते हैं । सामान्य जन-धन-सम्पत्ति आदि का संग्रह करते हैं तो वे साधु उसका त्याग करते हैं । उसी प्रकार साधारण जन केशों को आसक्ति भाव से फैशन के लिये साज संवारते हैं, किन्तु जैन साधु निर्मोही, निर्ममत्व के धनी होने के कारण एवं शाश्वत आत्म सौन्दर्य बोध से ओत-प्रोत होने के कारण उनका केशों के प्रति कोई ममत्व भाव नहीं रहता है । इस कारण वे स्वयं के दाढ़ी-मूंछ एवं सिर के केशों को हाथ से उखाड़कर फेंकते हैं ।

पूर्व जैनाचार्यों ने कहा—

अदैन्यासगं वैराग्य परीषह कृते कृतः ।
अत एव यतीशानां केशोत्पाटनं सद्विधि ॥

दीनता रहितपना, अंतरंग-बहिरंग परिग्रह से रहितपना, वीतरागता, उपसर्ग, परिषह जय, कष्ट-क्लेश आदि का सहन अर्थात् कष्ट में सहनशीलता केशलोंच करने पर होती हैं ।

अदैन्यं वैराग्यं चापि कृते ये केशलोंचने ।
यतीश्वराणां वीरत्वं व्रतभूषण दीपकम् ॥

केशलोंच करने से अदीनता, वैराग्य, वीरत्व एवं व्रत में निर्मलपना प्रगट होता है ।

दिगम्बर साधु वस्त्र का भी त्यागी होने के कारण धन सम्पत्ति से सर्वथा दूर रहते हैं । यदि केशों को स्वहस्त से उखाड़े बिना नाई से या कैंची-उस्तरा आदि से केश बनायेंगे तो रुपये की आवश्यकता पड़ेगी । स्वयं के पास रुपये नहीं होने के कारण

रुपये के लिये दूसरे के पास हाथ पसारना पड़ेगा। इससे साधु की अयाचकवृत्ति नष्ट हो जायेगी। इतना ही नहीं, इससे साधु एक दीन-हीन भिखारी के सदृश पतित, क्षुद्र प्राणी बन जायेगा। दूसरों के सामने दीन-हीन होकर भीख माँगने वाला महान दिगम्बर साधु नहीं हो सकता है।

कबीर दास ने कहा है—

मांगन मरण समान हैं मत मांगे कोई भीख।
मांगन से मरना भला, यह सद्गुरु की सीख॥

केश बनाने के लिये भी कैंची आदि उपकरण या उसके लिये रुपये आदि भी साधु नहीं रख सकते हैं क्योंकि जैन साधु भौतिक वस्तुओं का संचय करना महा-पाप रूप से स्वीकार करके प्रतिज्ञा पूर्वक आजीवन त्याग कर देते हैं प्रतिज्ञा-पूर्वक त्याग की हुई चीजों का संग्रह करना और भी महापाप है।

तुलसीदास ने कहा है—

त्यागन कर संग्रह करे विषय भोग संसार।
तुलसी ऐसे संत को बार-बार धिक्कार॥

अत एव आत्म गौरव की सुरक्षा के लिये स्वावलम्बन के लिये निःसंग, असंचय, स्वशक्ति की परीक्षा के लिये निर्ममत्व वीतरागता की पुष्टि के लिये साधु लोग दो, तीन या चार महीने में लोंच करते हैं। इससे अधिक दिन तक केशों को बढ़ाने पर केशों में जूं, लीक आदि जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। वे जीव शरीर पर चलते हैं और काटते भी हैं, जिससे साधुओं को कष्ट हो सकता है एवं मन में चंचलता उत्पन्न हो सकती हैं। मन चचंल होने पर ध्यान अध्ययन तपश्चरण में बाधा पहुँचती है। इतना ही नहीं, मर्दन से खुजलाने से उसका मरण भी सम्भव है।

जैन साधु क्षुद्र एकेन्द्रिय जीवों को भी कष्ट होने पर अत्यन्त दुःखी होते हैं। पूर्णरूप से अहिंसा व्रत पालन करने के कारण सम्पूर्ण जीवों की समग्रता से रक्षा करना उनका श्रेष्ठ एवं जेष्ठ कर्त्तव्य होता है। तब वे केशों को बढ़ाकर जीवों को कष्ट पहुँचाने का साधन क्यों जुटायेंगे? देखा जाता है कि कुछ साधु जटा-जूट बढ़ाने के कारण उनके केश में लीक आदि जीव हो जाते हैं, जिससे वे खुजलाते रहते हैं कुछ जीव-जन्तु तो सिर से झड़कर नीचे भी गिरते हैं। इसी प्रकार अनर्थ न हो इस भावना से महान् दयालु जैन साधु जीव उत्पत्ति के पूर्व ही केश उत्पाटन कर लेते हैं।

केशलोंच के दिन साधु उपवास पूर्वक स्वयं या दूसरे की सहायता से अर्थात् स्वहस्त या दूसरों के हस्त से सिर, दाढ़ी, मूँछ के केश विधि पूर्वक उखाड़ते हैं। वे

केशलोंच करते हुए मानो क्लेशों (कर्म, कष्ट, कषाय) का ही लोञ्चन (उखाड़ना) ही करते हैं। केश हाथ में दृढ़ता से आवें इसलिये शुद्ध राख का प्रयोग करते हैं। केशलोंच में किसी प्रकार का कष्ट न हो इस दृष्टि से किसी भी प्रकार की औषधि का प्रयोग नहीं करते हैं। केशलोंच के पूर्व (प्रारम्भ) में सिद्ध भक्ति व योगभक्ति करते हैं। केशलोंच में यत्किंचित् दोषों की सम्भावना हो सकती है उसे दूर करने के लिये प्रायश्चित भी लेते हैं।

साधुओं के 28 मूलगुण में केशलोंच एक मूलगुण है। बिना केशलोंच किये उसका साधुत्व ही नहीं रह सकता है इसलिये वे अनिवार्य रूप से केशलोंच करते हैं। कभी-कभी भक्त लोग केशलोंच को देखने के लिए एवं धर्म प्रभावना के लिए जन साधारण के सम्मुख केशलोंच करने के लिए साग्रह प्रार्थना करते हैं। साधु को तो केशलोंच करना ही है तब भक्तों की भावना को देखते हुए एवं धर्म प्रभावना के लिए जन साधारण के सामने भी केशलोंच करते हैं। केशलोंच देखने से धर्म के प्रति आस्था—भक्ति उत्पन्न होती है। वे सोचते हैं कि हम जिन केशों को साज-संवार कर रखते हैं, मुनिमहाराज उन केशों को जैसे फालतू घास को खेत से कृषक उखाड़कर फेंक देता है उसी प्रकार उखाड़कर फेंक रहे हैं। हमारा भी कब सुयोग्य अवसर आवे जब हम संसार के क्लेशों के साथ-साथ केशों को भी उखाड़ कर/फेंककर शान्त दिगम्बर मुद्रा धारण करें।

केश रखने पर केश को स्वच्छ रखने के लिए साबुन, पानी, कंघा आदि की भी आवश्यकता होगी। साबुन आदि से केश स्वच्छ करने से हिंसा की अधिक सम्भावना रहती है। केशों को सजाने से समय का अपव्यय होता है, शृंगार भाव प्रगट होता है, ब्रह्मचर्य व्रत में दोष उत्पन्न होता है। इसी प्रकार केशलोंच नहीं करने से हिंसा, परिग्रह, अब्रह्मचर्य, याचकता, दीनता, जिन आज्ञा का उल्लंघन, व्रत में दूषण, मन में क्षोभता आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। केशलोंच करने से धीरता, वीरता, वीतरागता, निर्ममता, अयाचकता, अहिंसा, असंग्रह (अपरिग्रह) ब्रह्मचर्य, स्वावलम्बन, कष्ट-सहन का अभ्यास, अप्रमाद, आत्म शक्ति की वृद्धि, जिन आज्ञा का परिपालन, व्रत में निर्ममता आदि अनेकों गुण प्रगट होते हैं। इसलिये उपरोक्त समस्त गुण-दोषों का विचार करते हुए दिगम्बर जैन साधु स्वयं हस्त से या साधर्मी के हाथ से केश-लोंच करते हैं। इसी प्रकार जैन साध्वियाँ भी केशलोंच करती हैं। ऐलक साधना के लिये करते हैं। कुछ क्षुल्लक भी साधना के लिये केशलोंच का अभ्यास करते हैं।

केशलोंच करने का एक कारण यह भी है कि केश नाई से बनवाने से नाई जिस प्रकार सिर को इधर-उधर घुमाने के लिये कहेगा उसी प्रकार साधु को उसकी

आज्ञा के अनुसार करना पड़ेगा। इससे साधु की स्वतन्त्र-वृत्ति, स्वाभिमान, आत्म-गौरव को धक्का लगेगा। इसलिये साधु नाई से बाल नहीं बनवाते हैं।

समता सम्हारैं थुति उचारैं वन्दना जिन देव को।
नित करे श्रुति रति करैं प्रतिक्रम तजे तन अहमेव को।
जिनके न हौंन्ह न दन्त धोवन केश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयन में कछु शयनि एकाशन करन ॥5॥
इकबार दिन में लैं आहार खड़े अलप निज पान में।
केचलोंच करत न डरत परीषह सो लगे निज ध्यान में।
अरि मित्र महल मसान कंचन काँच निंदन थुति करन।
अर्घावतारन अरि प्रहारन में सदा समता धरन ॥6॥

आशानाम नदी मनोरथ जला तृष्णा तरंगा कुला,
रागग्राहवती वितर्क विहगा धैर्यद्रुम ध्वांसिनी।
मोहावर्त मुदुस्तराऽति गहना प्रोतंग चिंतातटी।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगिश्वराः ॥41॥ पृष्ठ 46
वैराग्य शतक/भर्तृहरी

आशा नामकी एक नदी है, उसमें मनोरथ रूपी पानी हैं, तृष्णा उनकी लहरें हैं, राग-द्वेष उसके घड़ियाल-मगर हैं। हमारे अनुकूल और प्रतिकूल पदार्थों के निर्णय करने की विचारधारा-रूप वितर्क ही जिसके ऊपर पक्षों के रूप में मोह-रूप भंवरा जो अत्यंत घातक है और अत्यंत कठिन है और बड़ी-बड़ी चिंतायें जिसका तट है ऐसे नदी के पार हुए शुद्ध अंतकरण के बड़े-बड़े योगीराज ही आनन्दित रहते हैं।

निंदन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु, लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगांतरे वा, न्याय्यत्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥84॥

नीति निपुण विद्वान निंदा करें या स्तुती करें, लक्ष्मी प्राप्त हो या पास, जो है वह भी चली जाय, आज ही मृत्यु आ जाय या युगांतर से, किन्तु गम्भीर पुरुष न्याय मार्ग से कभी च्युत नहीं होते।

अध्याय 4

दिगम्बर जैन साधुओं के अट्ठाईस मूलगुण व चौंतीस उत्तरगुण

केवल नग्न रहने से या केशलोंच करने से कोई दिगम्बर साधु नहीं हो सकता है। उपरोक्त गुणों के साथ साधुओं को आध्यात्मिक उन्नति के लिये अनेक गुणों का पालन करना पड़ता है। उनमें से 28 मूलगुण एवं 34 उत्तरगुण मुख्य रूप से हैं। उसका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

अट्ठाईस मूलगुण—पाँच महाव्रत

1. अहिंसा महाव्रत—मन, वचन, काय से स्थूल-सूक्ष्म, त्रस-स्थावर, चर-अचर जीवों को सम्पूर्ण प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाना। आत्मवत् सम्पूर्ण जीव को मानकर दया का पालन करना।

2. सत्य महाव्रत—स्व-पर अहितकारी मिथ्या, कर्कश, अहितकारी वचन नहीं बोलना, हित-मित-प्रिय आगमोक्त वचन कहना।

3. अचौर्य महाव्रत—सम्पूर्ण प्रकार की दूसरों की भौतिक वस्तु को बिना अनुमति से स्वीकार नहीं करना।

4. ब्रह्मचर्य महाव्रत—सम्पूर्ण प्रकार से स्त्री सेवन को मन, वचन, काय से त्याग कर ब्रह्मस्वरूप में लीन रहना।

5. अपरिग्रह महाव्रत—अंतरंग (क्रोध, मान, माया लोभादि ग्रन्थि) तथा बहिरंग धन-धान्य आदि सामग्रियों का पूर्ण रूप से त्याग करना।

पाँच समिति—

6. ईर्या समिति—सम्पूर्ण जीवों की रक्षा करते हुए गमन करना।

7. भाषा समिति—हित-मित-प्रिय आगमोक्त मृदु सरल वचन बोलना।

8. एषणा समिति—दूसरों को बिना कष्ट पहुँचाये शुद्ध-प्रासुक, शाकाहारी भोजन धर्म साधन के लिये दिन में एक बार करना।

9. आदान निक्षेपण समिति—जीवों की रक्षा करते हुए सोना, बैठना या वस्तु को उठाना या रखना।

10. प्रतिष्ठापन समिति—जीवों की रक्षा करते हुए मलमूत्र का त्याग करना।

पाँच इन्द्रिय विजय—

11. स्पर्शन इन्द्रिय विजय—स्पर्शन इन्द्रिय जनित राग, द्वेष का त्याग करना।

12. रसना इन्द्रिय विजय—रसना इन्द्रिय के विषयभूत खट्टा-मीठा, चरपरा आदि रसों में राग-द्वेष नहीं करना।

13. घ्राण इन्द्रिय विजय—सुगंध-दुर्गन्ध के प्रति आकर्षण विकर्षण भाव नहीं रखना।

14. चक्षु इन्द्रिय विजय—काला, पीला, सफेद आदि वर्ण सम्बन्धी राग-द्वेष का त्याग करना।

15. कर्ण इन्द्रिय विजय—सुस्वर, दुस्वर के प्रति राग-द्वेष नहीं रखना।

षट् आवश्यक—

16. समता—(साम्यभाव)—शत्रु-मित्र, लाभ-अलाभ, जन्म-मरण, सुख-दुःख, मान-अपमान, निन्दा-प्रशंसा आदि में राग-द्वेष न करते हुए साम्यभाव में रहना।

17. वंदना—किसी एक पूज्य पुरुष को मुख्य करके उनकी भक्ति-स्तुति करना।

18. स्तुति—अनेक पूज्य पुरुष को मुख्य करके उनकी सामूहिक रूप से स्तुति वन्दना करना।

19. प्रतिक्रमण—भूतकालीन दोषों के निवारण के योग्य पुरुषार्थ करना।

20. प्रत्याख्यान—भविष्यत् कालीन दोषों से स्वयं की रक्षा के लिये पुरुषार्थ करना।

21. कायोत्सर्ग—शरीर सम्बन्धी मोह का त्याग करने के लिये शरीर के प्रति निर्ममत्वभाव रखना।

सात विशेष गुण—

22. अचेलकत्व—निर्विकार यथाजात बालकवत् सहज रूप धारण करने के लिये समस्त वस्त्र आभरण का त्याग करना।

23. अस्नान—मंत्र स्नान, व्रत स्नान, वायु स्नान, सूर्य किरण स्नान आदि के बिना जल से सर्वाङ्ग स्नान का त्याग करना।

24. अदंत धावन—मंजन, दातौन, ब्रुश आदि से दाँतों की चमक, दमक नहीं करना।

25. केशलोंच—दो, तीन या चार महीने में सिर-दाढ़ी, मूंछ के केशों को हाथों से उखाड़ना।

26. भूमि शयन—पलङ्ग, गद्दी, तकिया आदि का बिना उपयोग किये शुद्ध प्रासुक जीव रहित भूमि, शिला, फलक, चटाई, घास आदि में क्लान्ति (थकान) निवारण के लिये अल्प शयन।

27. एक भुक्ति—दिन में केवल शुद्ध-प्रासुक भोजन 32 अंतराय को टालकर करना। साधु भोजन करते हुए भोजन में यदि केश, चर्म, मरा हुआ जीव, मांस, हड्डी, नाखून आ जाते हैं तब मध्य में ही आहार त्याग कर देते हैं। कच्चा माँस, मरते हुए जीव, मद्य, अग्नि दाह आदि देखने पर भी अंतराय कर लेते हैं। आहार को जाते समय शव मरा हुआ पंचेन्द्रिय जीव देखने पर उस दिन आहार ग्रहण नहीं करते हैं। शरीर के ऊपर पक्षी की बीट करने पर, माँसाहारी पशु के स्पर्श से, मद्यपायी, माँसाहारी मनुष्य के स्पर्श से, चाण्डाल के स्पर्श से भी उस दिन आहार नहीं करते हैं। भोजन के समय करुण दुःख स्वर सुनने पर, क्रन्दन की आवाज सुनने से, कलह होने पर या कलह की आवाज सुनने पर, मारकाट आदि मर्म भेदी आवाज सुनने पर अंतराय कर लेते हैं। आहार कराने वाला यदि गिर जाता है अथवा पात्र गिर जाता तब भी अंतराय कर लेते हैं। रजस्वला स्त्री के स्पर्श से भी अंतराय कर लेते हैं। दीपक या अग्नि के बुझ जाने पर अंतराय करते हैं। सचित्त बीज या फल पेट में जाने पर अंतराय करते हैं। आहार के समय पेट की कृमि निकलने पर अंतराय कर लेते हैं।

28. स्थिति भोजन—साधु लोग बैठकर भोजन नहीं करते हैं किन्तु दोनों पैरों में चार अंगुल का अन्तर रखकर निर्विकार रूप से, मौन से हूँ-हाँ बिना किये अयाचक एवं अदीनता भाव से खड़े होकर अंजुली पुट से आहार लेते हैं। किसी प्रकार के पात्र में वे भोजन नहीं करते।

चौंतीस उत्तर गुण

6 बहिरंग तप, 6 अंतरंग तप तथा 22 परिषह मिलकर मुनियों के 34 उत्तर गुण होते हैं—

छह बहिरंग तप—

1. अनशन—आत्म विशुद्धि के लिये इन्द्रिय के मद एवं कषाय को क्षीण करने के लिए सम्पूर्ण प्रकार आहार-पानी का त्याग करना अनशन तप है।

2. अवमौदर्य—प्रमाद को जीतने के लिए एवं ध्यान अध्ययन के लिए भूख से कम खाना अवमौदर्य तप है।

3. वृत्ति परिसंख्यान—निश्चित प्रकार के घर से, व्यक्ति से, या निश्चित प्रकार का भोजन ग्रहण करना वृत्ति परिसंख्यान तप है।

4. रस त्याग—जिह्वा की लालसा को क्षीण करने के लिये तथा इन्द्रिय मद को संयमित करने के लिये एकाधिक रसों का त्याग करना रस त्याग तप है।

5. एकांत शय्यासन—निर्विघ्न ध्यान अध्ययन मनन-चिन्तन के लिये स्त्री-पुरुष, नपुंसक आदि रहित स्थानों में निवास करना।

6. काय क्लेश—आत्म साधन के लिये पद्मासन आदि आसन धारण करना, मौन धारण करना, नदी, पर्वत आदि में रहकर शारीरिक कष्ट को समता भाव से सहन करना कायक्लेश तप है।

छह अन्तरंग तप—

7. प्रायश्चित—दोषों का परिमार्जन करने के लिये प्रयत्न करना।

8. विनय—गुण और गुणी के प्रति नम्र सरल व्यवहार करना।

9. वैयावृत्य—(सेवा)—आकाँक्षा रहित होकर साधुओं की सेवा करना।

10. स्वाध्याय—आत्म विशुद्धि के लिये अज्ञान अन्धकार को नष्ट करने के लिये, अहित का परिहार, हित में प्रवृत्ति के लिये सत्-साहित्य का अध्ययन करना।

11. व्युत्सर्ग—शरीर एवं बाह्य वस्तुओं से ममत्व का त्याग करना।

12. ध्यान—समस्त अशुभ प्रवृत्तियों से मन को हटाकर आत्म चिंतन, तत्व में मन को स्थिर करना।

बाईस परिषह जय—

13. क्षुधा जय—समता भाव से क्षुधा वेदना को सहन करना।

14. पिपासा जय—समता भाव से प्यास को सहन करना।

15. शीत जय—समता भाव से शीत को सहन करना।

16. उष्ण जय—समता भाव से उष्ण को सहन करना।

17. दंशमसक जय—समता भाव से डाँस, मच्छर द्वारा काटे जाने पर भी सहन करना।

18. नग्न परिषह जय—सम्पूर्ण रूप से नग्न होने पर भी किसी प्रकार का कुविचार भाव उत्पन्न नहीं होना।

19. अरति जय—अरति के कारण होने पर भी धर्म में अरति भाव व अप्रीतिभाव न होना।

20. स्त्री परिषह जय—स्त्रियों द्वारा विकार भावों को प्राप्त न होना स्त्री परिषह जय है।

21. चर्या परिषह जय—कंकरीले, पथरीले रास्ते में गमन करने पर भी खेद खिन्न न होना।

22. निषद्या परिषह जय—ध्यान-अध्ययन तपस्या के लिये एक आसन में अधिक समय तक बैठने पर जो कष्ट होता है उसे साम्य भाव से सहन करना।

23. शय्या परिषह जय—कठोर भूमि आदि में सोने पर जो कष्ट होता है साम्य भाव से सहन करना।

24. आक्रोश परिषह जय—दूसरों के द्वारा प्रयोग किया गया मर्मभेदी वचन को साम्य भाव से सहन करना।

25. वध परिषह जय—दूसरों द्वारा तलवार अस्त्र-शस्त्र से प्राण घातक आघात होने पर भी समता भाव से सहन करना।

26. याचना परिषह जय—मरणासन्न होने पर भी आहार औषधि की याचना नहीं करना।

27. अलाभ परिषह जय—दीर्घकाल तक आहार का लाभ न मिलने पर भी अलाभ को लाभ से भी अच्छा मानना।

28. रोग परिषह जय—भयंकर कष्ट प्रद रोग होने पर भी आकुल-व्याकुल न होकर साम्य भाव से सहन करना।

29. तृण स्पर्श जय—विहार करते समय पैर में तिनके काँटे आदि लगने पर भी साम्य भाव से सहन करना।

30. मल परिषह जय—शरीर में मैल जमने पर भी समता से सहन करना।

31. सत्कार पुरस्कार परिषह जय—स्वयं ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी होते हुए भी यदि कोई प्रशंसा आदि नहीं करता है तो भी मन में किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प-दीनता आदि धारण नहीं करना॥

32. प्रज्ञा परिषह जय—अधिक तार्किक बुद्धि, प्रज्ञा, शक्ति के होने पर भी अहंकार नहीं करना।

33. अज्ञान परिषह जय—सतत् प्रयत्न करने पर भी अधिक ज्ञान प्राप्त न होने के कारण संक्लेश भाव नहीं रखना।

34. अदर्शन परिषह—दीर्घ कठोर तपश्चरण आदि से भी विशेष ज्ञान तथा ऋद्धियों की प्राप्ति न होने पर भी शुद्ध मोक्षमार्ग में अश्रद्धा नहीं करना।

उपरोक्त गुणों के साथ-साथ भी मुनि में और भी अनेक गुण होते हैं। वीरसेन स्वामी ने साधुओं को कुछ महत्वपूर्ण उपमाओं से अलंकृत किया है। जैसे—

सिंह गज वृषभ मृग पशु, मारूत सूर्योदधि मन्दरेन्दु मणयः।
क्षिति उरगाम्बर सदृशाः परमपद विमार्ग का साधवः॥

साधु सिंह के समान वीर, निर्थक, हस्ती के समान बलवान, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान सरल, वायु के समान निसंग, सूर्य के समान तेजवान, समुद्र के समान गम्भीर, मन्दरमेरु के समान धीर-निष्कंप-अचल, चन्द्र के समान शीतल, मणि के समान स्वच्छ तेजयुक्त, पृथ्वी के समान क्षमावान्, सूर्य के समान अनियतवासी, आकाश के समान उदात्त-निर्मल होते हैं। वे महान् साधु परम अमृत पद स्वरूप मोक्ष पदवी के पथिक होते हैं। इसी प्रकार महान् साधु चलता फिरता जीवन्त धर्म एवं जीवन्त तीर्थ है।

इसी प्रकार महान् गुणों से सहित स्व-परोपकारी आत्म विद्या विशारद, सहज सरल प्राकृतिक रूप के धारी, रत्नत्रय के धनी, निर्ग्रन्थ साधुओं के सर्व तापहारी चरण कमल में मेरा अनंत वंदन ॥

अखिल विश्व के साधुवृन्द के चरण सेवक

—कनकनन्दी

जातिजरोरु रोग मरणातुर शोकसहस्र दीपिताः
दुःसह नरक पतन सन्त्रस्तधियः प्रतिबुद्ध चेतसः ।
जीवितमंबु बिंदु चपलं, तडिदभ्रसमा विभूतयः
सकलमिदं विचिंत्य मुनयः प्रशमाय वनांतमाश्रिता ॥2॥योगिभक्ति

जो मुनिराज जन्मजरा मृत्यु और भगंदरादि हजारों बीमारियों से दुःखित हैं, जो पुत्र कलत्र आदि के वियोग जनित संताप से अत्यंत जाज्वल्यमान हैं, असहाय नरक पतन से जिनका मन भयभीत हैं, जिनके हृदय में हेय-उपादेय का विवेक जागृत है ऐसे मुनि इस जीवन को पानी के बुलबुले के समान अत्यंत चंचल समझकर, तथा संसार में इन सब विभूतियों को बादल और चमकने के बिजली समान क्षणभंगुर समझ करके संसार का नाश करने के लिये या राग द्वेष दूर करने के लिये वन में रहते हैं।

व्रत समिति गुप्ति संयुताः, शमसुखमादाय मनसि वीत्त मोहाः ।
ध्यानाध्यायन वशंगताः, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरंति ॥2॥

जो मुनिराज पंच महाव्रतों को पालन करते हैं, पंच समिति पालन करते हैं और जिनके दर्शन मोहनीय कर्म सब नष्ट हो गये हैं और वे हमेशा ध्यानाध्ययन में लीन रहते हैं, ऐसे महामुनि मन में मोक्ष सुख की इच्छा करके कर्मों का नाश करने के लिये तप करते हैं।

अध्याय 5

साधु का परिवार

एलाचार्य सिद्धान्त चक्रवर्ती पूज्य उपाध्याय श्री कनकनन्दी जी ने आज अपने सरल प्रवचन में कहा—बन्धुओं ! रत्न की दुकान पर रत्न ही मिलते हैं–परन्तु अगर खरीददार के पास इतना रुपया नहीं है तो वह उसे कैसे खरीद सकता है। इसी प्रकार जिनके ज्ञान का क्षयोपशम बहुत कम हो वह क्या समझेगा प्रवचन को ! मैं हमेशा तुमको मिष्ठान खिलाता हूँ, हलवा खिलाता हूँ, पूरी, कचौड़ी खिलाता हूँ, तो आज पापड़ खिलाऊँगा। जैन धर्म वैज्ञानिक धर्म है उसको समझने के लिए कुछ कठिन शब्दों का प्रयोग तो हो ही जाता है जिसको सब श्रोता नहीं समझते क्योंकि सभी श्रोता तो तेज बुद्धि वाले नहीं होते, तो श्रोताओं के अनुसार ही मैं भी उपदेश करूँगा जैसे भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि श्रोताओं की बुद्धि के अनुसार ही परिवर्तित होती गई। तो आज मैं सरल प्रवचन करूँगा। विषय भी सरल ले रहा हूँ 'साधु का परिवार'।

परिवार दो प्रकार का होता है एक बहिरंग और दूसरा अन्तरंग। आप लोगों का परिवार बहिरंग परिवार है और साधु का अन्तरंग। एक राजा व रानी वन विहार को गये–वन में एक नग्न साधु को देखकर रानी ने पूछा कि इस साधु का न कोई भाई-बन्धु है, न इसके पास कपड़े, न अंग-रक्षक, और है यह भयानक जंगल! तो क्या इस साधु को भयानक जंगल से डर नहीं लगता ? राजा ने उत्तर दिया कि यह सामान्य व्यक्ति नहीं इसका भी विशाल परिवार है जिसमें माता-पिता, भाई-बहन, स्त्री-पुत्र आदि सभी तो हैं—

धैर्य्ययस्य पिता क्षमाश्च जननी शान्तिश्चिर गृहिणी ।
सत्यं सुनूरयं दया च भगिनी भ्रातः मनः संयमः ।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं। (रत्नत्रयभूषणम्)
ये ते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्मात् भीतो योगिनः ॥

हे रानी ! जिनका विशाल परिवार है सो सुन ! धैर्य जिनका पिता है, अनुशासन धैर्य का प्रतीक है। सांसारिक परिवार तो इनका नहीं है परन्तु इनका आध्यात्मिक परिवार है। साधु के जीवन में बराबर संघर्ष रहता है। यदि संघर्ष न हो तो

साधु स्वाधु बन जाये। संघर्ष न हो तो जीवन में उन्नति नहीं कर सकता। संघर्ष से जूझने के लिये चाहिये धैर्य।

जीवन में आन्धी आवे आवे घोर तूफान।
सुमेरु सा अचल रहे यह साधु पहिचान॥

कोई नंगा हो, मुँड मुडैया हो, जटा बढ़ा ली हो, दाढ़ी बढ़ा ली हो, केश-लोंच करता हो, लंगोटी पहनता हो, सफेद कपड़ा पहने हो तो क्या वह साधु बन जायेगा ? ये तो भिखारी के भेष हैं ये कहते फिरते हैं 'देहि मां रोटी' ऐसे सुसंस्कृत भिखारी तो साधु के नाम पर कलंक हैं। प्रत्येक धर्म में प्रत्येक देश में ऐसे ढोंगियों का बहिष्कार किया है। जीवन में आँधी भी आ जाये, फिर भी अटल, और धैर्यवान होते हैं सच्चे साधु। राजा हरिश्चन्द्र के बारे में एक कवि ने कहा है—

सूर्य टरै चन्द्र टरै, टरै जगत व्यवहार।
पग न टरै हरिश्चन्द्र का, टरै न सत्यविचार॥

राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य के लिये राज्य का, स्त्री का, बच्चों का सभी का तो त्याग कर दिया था। श्मशान में जाकर चांडाल का कार्य किया परन्तु सत्य से विचलित नहीं हुए। चाहे अग्नि भी शीतल हो जाये, अमृत भी विष हो जाये, विष भी अमृत हो जाये, सुमेरु भी अपनी जगह से हिल जाये परन्तु सच्चा साधु धर्म पथ से एक इंच भी नहीं हटता।

भारत में राजा विक्रमादित्य हुए। जिनके नाम से आज भी विक्रम संवत् चल रहा है। वे महानीतिवान, महान्यायवान थे। एक दिन वेताल उनके पास आया, बोला—मैं तेरा सर्वस्व लेने आया हूँ। केवल एक चीज तेरे पास छोड़ सकता हूँ, जो तू चाहे रख ले। विक्रमादित्य ने कहा मुझे राज्य नहीं चाहिये, परिवार नहीं चाहिये, धन नहीं चाहिये, सैनिक शक्ति नहीं चाहिये, लक्ष्मी जो पुण्य की दासी है वह भी नहीं चाहिये, राज्य भी जो मिट्टी के समान है मुझे नहीं चाहिये, बस मेरे पास तो केवल धैर्य छोड़ दे बाकी तू सब कुछ ले जा। बेताल बोला तूने तो सब कुछ रख लिया है, मैं अब क्या लूँगा। तो जो धैर्यवान नहीं वह छोटा सा भी काम नहीं कर सकता है। आयुर्वेद में भी बताया है जो धैर्य से रोग को भी ललकारते हैं उनका रोग भी भाग जायेगा। इस तरह साधु का पिता है धैर्य।

माता का नम्बर पहला होता है तभी तो पहले स्त्री का नाम लिया जाता है जैसे लक्ष्मी-नारायण,सीता राम। भरण-पोषण करने वाली भी माता होती है। तो साधु की माता होती है क्षमा। जो नाराज होता है वह साधु नहीं, और जो साधु होता है वह नाराज नहीं होता। साधु किसी को कभी कष्ट दे ही नहीं सकता।

हिन्दू शास्त्रों में वर्णन आता है कि बड़े तपस्वी साधु होते हैं। वह किसी पर नाराज होते हैं तो उसे श्राप भी दे देते हैं। साधु को तो क्षमावान होना चाहिये। क्षमावान कैसा ? पृथ्वी जैसा। पृथ्वी जैसे सब कुछ सहन करती है उसी प्रकार साधु भी सब कुछ सहन करते हैं। विरोध की, बदले की शक्ति होते हुए भी वह विरोध नहीं करते। वीरों की क्षमा ही क्षमा है, कायरों की नहीं। श्री अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थ सिद्धि-उपाय ग्रन्थ में कहा है—

अनुसरतां पदमेतत् करम्बिताचारनित्यनिरभिमुखा।
एकान्तविरतिरुपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः॥

इस रत्नत्रय रूप पदवी का अनुसरण करने वाले अर्थात् इस पदवी को प्राप्त हुए मुनियों की वृत्ति पापक्रिया मिश्रित आचारों से सर्वथा परान्मुख तथा परद्रव्यों से सर्वथा उदासीन रूप और लोक से विलक्षण प्रकार की होती है।

वीरसेन स्वामी ने जय धवला में भी कहा है—

सिंह गज वृषभ मृग पशु, मारुत सूर्योदधि मन्दरेन्दु मणयः।
क्षिति उरगाम्बर सदृशाः परमपद विमार्गका साधवः॥

सिंह के समान निर्भयी, धीर, वीर, धैर्यवान परन्तु हिंसक नहीं। ऐसा होता है साधु। और वह होता है गज के समान बलवान, वृषभ के समान भद्र, मृग के समान सरल, मारुति यानि हवा के समान निसंग, सूर्य के समान तेजवान, दैदीप्यवान, परन्तु भौंदू नहीं, कायर नहीं। साधु किसी के आदेश के अनुसार नहीं चलता। साधु की गति को उसके विचारों को कोई Challenge नहीं कर सकता। और कैसा होता है साधु ? उदधि के समान गम्भीर। उदधि में अनेक रत्न होते हैं तभी तो उसे रत्नाकार कहते हैं परन्तु फिर भी समुद्र गम्भीर होता है। इसी प्रकार सम्यग्-दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र रूपी रत्नत्रय के धारी होने पर भी साधु गम्भीर ही होते हैं। और सुनिये साधु इन्दु (चन्द्रमा) के समान शीतल होता है। संस्कृत के कवि भवभूति ने उत्तर राम चरित में कहा है—

वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति॥

साधु वज्र के समान कठोर होते हैं, चारित्र में बड़े कठोर होते हैं परन्तु दूसरों को कष्ट नहीं देते, दूसरों के लिये वे मृदु, कमल के समान कोमल होते हैं। दूसरों के दुःखों में दुःखी हो जाते हैं। उनका ध्यान रहता है कि उनके द्वारा एकेन्द्रिय जीव को भी कष्ट न हो। विचित्र स्वभाव सम्पन्न होते हैं साधु। यदि साधु क्रोध करता है तो वह साधु कहलाने लायक नहीं। एक बार शिष्य के बार-बार नाम पूछने

पर जब साधु को क्रोध आ गया तो शिष्य ने कहा ठीक है महाराज आपका नाम शान्तिसागर नहीं बल्कि ज्वालासागर ही होना चाहिये । और भी–मणि के समान प्रकाशमान अन्तर से दैदीप्यमान चमकता हुआ । जैसे मणि चाहे कीचड़ में पड़ा रहे फिर भी उसमें जंग नहीं लगता । इसी प्रकार साधु जल से भिन्न कमल की तरह रहता है । रागी प्रेमियों के बीच में रहते हुए भी वह निर्लिप्त रहते हैं । धरती के समान सहनशील, सर्प के समान निश्चित घर बनाने वाले नहीं । भले साधु 4 महीने एक स्थान पर रहते हैं परन्तु उसे घर नहीं बनाते, भक्तों में लिप्त नहीं होते, उनमें आसक्त नहीं होते । क्योंकि आशक्ति तो बहुत बड़ा बन्धन है । एक आदमी बछड़े को लिये जा रहा था और उसके पीछे उस बछड़े की माँ (गाय) चली आ रही थी । शिष्य ने गुरु से पूछा—गाय बंधी है या खुली । गुरु ने कहा कि गाय बंधी है बछड़े के प्रेम-पाश में, मोहपाश में बंधी है तभी तो किसी बाह्य बंधन के न होते हुए भी वह पीछे-पीछे चली आ रही है । Attachment का बंधन बहुत बड़ा बंधन है ।

साधु पक्षी के समान होते हैं । एक घर छोड़कर हजार घर बना लिये तो साधु काहे का । कहा है—"पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।" तो साधु किसी के अधीन नहीं होते । वह भक्ति करने वाले को आशीर्वाद दें और शस्त्र से मारने वाले को श्राप यदि दें तो साधुता कहाँ । वह तो सभी को समान भाव से आशीर्वाद देते हैं । काँटा हो या फूल, शत्रु हो या मित्र सबमें समता भाव रखते हैं । केवल जैन या बौद्ध साधु को ही श्रमण संज्ञा दी गई है क्योंकि वह "समः दुःखे-सुखेःसमः श्रमणः" हानि-लाभ, जन्म-मरण, प्रशंसानिंदा में समानता रखते हैं तभी तो उन्हें श्रमण कहा गया है । गीता में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था शत्रु, मित्र में जो साम्य भाव रखता है वह मेरा प्रिय है । अम्बर जैसे व्यापक निष्कलंक होते हैं । जैसे आकाश के उदर में सब समा जाते हैं ऐसे उनके हृदय में सम्पूर्ण विश्व कुटुम्ब के समान समा जाता है । न किसी से बैर न किसी से मैत्री । वे होते हैं मोक्षमार्ग में गमन करने वाले आत्म-साधना में लीन ।

'No Knowledge without College.
No life without wife.'

ऐसा कहा जाता है तो साधु के भी पत्नि होती है । घर क्या है ? गृहिणी ही घर है । तभी तो गृहिणी के आ जाने पर कहा जाता है कि इसका घर बस गया । साधु के भी गृहिणी होती है और वह है शांति ! सुख । ये जो आज पत्नि दिखती है ये तो हड्डी की पुतली है । असली पत्नि तो होती है शांति । परमात्म-प्रकाश में आचार्य योगेन्द्र देव ने कहा है :—

मुणि लहइ अणंत–सुहु णिय–अप्पा झायंतु ।
तं सुहु इंदु वि णवि लहइ देविहिं कोडि रमंतु ॥

जो राग द्वेष से बंधा है, तनावयुक्त है, उसका पतन निश्चित ही है । सुख का अनुभव विश्व के वैभव से भी अधिक है । एक ओर तो इन्द्र, देव, चक्री, नारायण आदि का इन्द्रिय सुख रख लो और तुला के दूसरे पलड़े पर साधु की शांति का अनन्तवाँ भाग रख लो तो शांति वाला पलड़ा ही भारी रहेगा, नीचा रहेगा । अभी 2–3 दिन हुए समाचार पत्र में आया था कि एक महिला की शादी 14 वर्ष की आयु में हो गयी परन्तु 8 वर्ष बाद तक भी उसके पुत्र नहीं हुआ । घर, बाहर, मौहल्ले, पड़ोस की स्त्रियाँ उसे ताने मारने लगीं, जिसको वह सहन नहीं कर सकी और उसने आत्महत्या कर ली ।

साधु का लड़का कौन है ? सत्य । सत्य ही उसका उत्तराधिकारी है । सत्य नहीं तो कुछ भी नहीं । महात्मा गांधी कहा करते थे "Truth is God, God is truth" साधु के सत्य, वाचनिक भी होते हैं, मानसिक भी व व्यावहारिक भी ।

साधु की बहिन है दया । तुलसीदास जी ने कहा है—

"दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान ।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग घट में प्राण ॥"

अहिंसा Negative form है और दया Positive form-Love, प्रेम, वात्सल्य ये सभी Positive form है ।

साधु का भाई है संयम । यदि मन Control में न हो तो इन्द्रियाँ भी Control में नहीं रहती । संयम नहीं तो जीवन बेलगाम घोड़े के समान है जो संसार रूपी गड्ढे में फेंक ही देगा । भगवान महावीर कहते हैं कि हे गौतम ! संयम बिना एक घड़ी भी नहीं गुजरनी चाहिये । संयम ही अमृत है । रेलगाड़ी का Balance बिगड़ जाये तो Accident हो जाता है । फल काटते हुए चाकू का Balance बिगड़ जाये तो उंगुली कट जाती है । साधु हित, मित, प्रिय, वचन बोलते हैं । वह जानते हैं कि अप्रिय वचन तो बाणों से भी गहरा घाव कर देता है ।

भूमि ही साधु का पलंग है । कितना बड़ा पलंग है यह ? आपका तो बहुत छोटा पलंग है परन्तु हमारा कितना बड़ा जहाँ चाहें वहाँ भूमि पर लेट जाते हैं । आपके पास तो 10-20 मीटर ही कपड़े होंगे परन्तु हमारे पास तो जितनी बड़ी दिशायें हैं उतने बड़े ही वस्त्र हैं और साधु के वस्त्र न फटते हैं, न दर्जी की जरुरत पड़ती है, और न मैले होते हैं । तुम तो बहुत गरीब हो तुम्हारे पास इतना धन ही नहीं कि तुम साधु जितने वस्त्र खरीद सको ।

अन्तर विषय वासना वरतै बाहर लोक लाज भय भारी ।
याते परम दिगम्बर मुद्रा धर नहीं सकै दीन संसारी ॥

ऐसी दुर्द्धर नगन परीषह जीतै साधु शील व्रतधारी ।
निर्विकार बालकवत् निर्भय तिनके चरणों धोक हमारी ॥

घर के एकान्त में भी आदमी नंगा नहीं रह सकता । क्योंकि उसमें विकार है । Main reason है विकार, जो कपड़े पहनने पर मजबूर करता है । नग्नत्व तो सहज प्राकृतिक रूप है । यह मनुष्य नंगा ही जन्म लेता है, नंगा ही मरता है, फिर बीच में यह दंगा क्यों ?

साधु ज्ञानामृत का भोजन करते हैं । एक बार भोजन लेते हैं । तभी तो चलने में आपसे ज्यादा तेज होते हैं । 1 घण्टे में 6 किलोमीटर तक चलने पर भी उन्हें थकान नहीं होती । सम्मेद शिखर की यात्रा 4-5 घण्टे में बिना थके कर लेते हैं । शक्ति भोजन से नहीं आती । साधु में तो आध्यात्मिक शक्ति होती है । उनमें तनाव नहीं होता इसीलिये शरीर हल्का रहता है ।

रत्नत्रय उनके अलंकार और उनके आभूषण हैं । आजकल आप इतने गहने पहनती हैं, हाथ में भी, कमर में भी, पैर में भी, सिर में भी, कान, नाक में भी मानो जैसे दुष्ट घोड़े को बाँध दिया जाता है, वैसे ही आपको सब तरफ से जकड़ दिया गया है । यह तो यथार्थ से बंधन है, श्रृंगार नहीं । श्रृंगार क्या है ?

हस्तस्य भूषणं दानं, सत्यं कंठस्य भूषणम् ।
श्रोत्रस्य भूषणं शास्त्रं, भूषणैः किं प्रयोजनम् ॥

आजकल आप मालायें पहनती हैं । मोती किससे बनते हैं ? हड्डी से, कभी सोचा आपने । हमने हापुड़ में हड्डी की फैक्ट्री सुनी है, उनसे कृत्रिम मोती बनते हैं । अघोरी साधु हड्डी की खोपड़ी, हड्डी की माला पहनते हैं ऐसे ही आप भी पहिनती हैं । आभूषण पहने जाते थे रोग निवारण के लिये, क्योंकि धातुओं में रोग दूर करने की शक्ति है परन्तु जो आप यह कृत्रिम मोतियों की माला पहनती हैं इनसे तो उल्टे रोग हो जाते हैं । असली श्रृंगार तो है रत्नत्रय, सदाचार और शील ।

तो जिनके इतना कुटुम्ब है, परिवार है उसे भय कैसा ? चीन के राजा की एक दार्शनिक से भेंट हो गयी । उसका लोयत्से नाम था । राजा के पूछने पर कि तुम कौन हो ? लोयत्से ने कहा कि मैं तो सम्राटों का भी सम्राट हूँ । सेना कहाँ है ? उसने कहा जिसके शत्रु नहीं उसे सेना की जरुरत क्या ? धन कहाँ है ? गरीब को चाहिये धन । तुम्हारी रानी कहाँ ? जिसे कामवेदना नहीं उसे रानी की आवश्यकता ही नहीं—तो राजा उस दार्शनिक फकीर से हार गया ।

साधु तो चलता-फिरता जीवन्त तीर्थ है । ये जो मिट्टी पत्थर के तीर्थ हैं ये

भी तो साधु की चरण रज पड़ने के कारण ही तीर्थ बने हैं । इसीलिये साधु का दर्शन ही पुण्य है । इनके दर्शन से ही कोटि-कोटि भवों के पाप दूर हो जाते हैं ।

'गु' अन्धकारस्तु 'रू' तस्य निरोधकम् ।
अन्धकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्यभिधियते ॥

गुरु—गु=अन्धकार, रु=प्रकाश । जो अज्ञान रूपी अन्धकार को हटाकर प्रकाश में ला दे वही तो गुरु है । वही तारण-तरण है । अपने आप भी तिरते हैं दूसरों को भी तिराते हैं । गुरु गुणों से भारी यानि जिसमें गुण भरे हो उसे कहते हैं । जो गुणों से खाली है वह गुरु नहीं ।

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय ।
बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय ॥

गुरु की महिमा तो भगवान से भी अधिक है । जिनवाणी, भगवान की मूर्ति ये तो मूक है, बोलने वाली नहीं परन्तु गुरु तो रास्ता दिखाने वाले हैं । इस अपेक्षा से गुरु को सर्वश्रेष्ठ कहा है । पशुओं के गुरु नहीं होते तभी तो वह उन्नति नहीं कर सकते । मुक्ता, मणि, चन्दन से भी अधिक महत्व है गुरूओं का ।

साधुनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थ भूता हि साधवः ।
कालेन फलन्ति तीर्थः सद्यः साधु समागमः ॥

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है । तीर्थ स्वरूप साधु होते हैं । तीर्थ यात्रा का फल कालान्तर से प्राप्त होता है, परन्तु साधु का समागम सद्य शुभ फल प्रदायी है ।

गंगा पापं शशि तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं तथा दैन्यं सर्वं सज्जन संगमः ॥

गंगा से पाप का नाश होता है, चन्द्रमा से ताप नाश होता है, कल्पतरु से दीनता नष्ट होती है, परन्तु साधु संगति से पाप, ताप, दीनता सबका नाश होता है ।

शैल-शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे-गजे ।
साधवो नहि सर्वत्र, चंदनं न बने-बने ॥

माणिक्य प्रत्येक पर्वत पर प्राप्त नहीं होता है । प्रत्येक हस्ती के मस्तक पर मुक्तामणि की प्राप्ति नहीं होती है, प्रत्येक वन में चंदन की उपलब्धि नहीं होती है, उसी प्रकार साधु सर्वत्र नहीं प्राप्त होते हैं ।

चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः ।
चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये, शीतलः साधु सङ्गमः ॥

लोक में चन्दन शीतल है। चन्दन से शीतल चन्द्रमा और चन्द्रमा से शीतल साधुओं का समागम होता है।

पाणिः पात्रं पवित्र भ्रमणपरिगतं भैक्षमक्षय्यमन्नं,
विस्तीर्णं वस्त्रमाशादशकमचपलं तल्पमस्दल्पमुर्वी ।
येषां निःसंगतार्गीकरणपरिणतस्वात्मसंतोषिणस्ते,
धन्या संन्यस्तदैन्यव्यतिकरनिकराकर्मनिर्मूलयन्ति ॥

वे धन्य हैं जिनका हाथ ही पवित्र पात्र है, भ्रमण द्वारा प्राप्त शिक्षा ही अक्षय भोजन है, लम्बी-चौड़ी दसों दिशायें ही जिनका वस्त्र है, पृथ्वी ही जिनकी बड़ी शैय्या है, अंतकरण के अनासक्ति योग से जो सदा संतुष्ट रहा करते हैं और दीनता के भावों को त्याग कर जन्म परम्परा से प्राप्त कर्मों का नाश करते हैं।

स्वयं साधु साधुता में रहे तो ठीक है वरना वह साधु कहलाने का अधिकारी नहीं। किसी अपेक्षा से तो यथार्थ साधु को भगवान से भी श्रेष्ठ माना जाता है।

साधु धर्म के संवाहक, धर्म की जीवन्त मूर्ति है। "साधु संसार में न होते तो जल जाता संसार" तो आपका कर्तव्य है कि साधु की रक्षा करें तो धर्म की रक्षा होगी, तुम्हारी रक्षा होगी।

दिनकर किरण निकट संतप्त शिला निचयेषु निःस्पृहाः ।
मल पटलावलिप्त तनवः, शिथिलीकृत कर्मबन्धनः ।
व्यपगत मदन दर्प रति, दोष कषाय विरक्त मत्सराः,
गिरिशिखरेषु चंडकिरणाभिमुखस्थितयो दिगंबरा ॥3॥

मुनिराज कभी स्नान नहीं करते, इसलिये उनके शरीर पर मल के पुट चढ़ते हैं, उससे उनका बदन मलीन हो जाता है, परन्तु उनके कर्म के स्थिति-बंध और अनुभाग बन्ध सब शिथिल हो गये है, नष्ट हो गये है, इसके अलावा उनके विषय वासनाओं का उद्रेक, इष्ट पदार्थों का राग मोह आदि दोष और क्रोधादि कषाय सब नष्ट हो गये है तथा जो मात्सर्य से रहित है और तेजस्वी सूर्य के समान जो हैं, ऐसे दिगम्बर मुनि निःस्पृह होकर, पर्वत शिखर पर सूर्याभिमुख होकर तप्त शिला पर बैठकर घोर तप करते हैं।

परिशिष्ट

卐 तारण-तरण गुरुभ्यो नमो नमः 卐

आहार–दान विधि

ले० उपाध्याय कनकनन्दी मुनि

पड़गाहन

1. मुनियों के लिए पड़गाहन विधि

हे स्वामिन् ! नमोऽस्तु नमोऽस्तु अत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।

2. आर्यिकाओं के लिये पड़गाहन विधि

बन्दामि माताजी ! वन्दामि माताजी, अत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।

3. क्षुल्लक के लिये पड़गाहन विधि

इच्छामि महाराज ! इच्छामि महाराज, अत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ, आहार जल शुद्ध है।

पड़गाहन के बाद शुद्धि

जब मुनि महाराज या माताजी खड़े हो जाते हैं तो तीन प्रदक्षिणा देना। उसके बाद नमोऽस्तु महाराज; मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार जल शुद्धि है, मम गृह में भोजन के लिये प्रवेश कीजिये।

विशेष—माताजी के लिये वन्दामि एवं क्षुल्लक जी के लिए इच्छामि कहें तथा क्षुल्लक जी के खड़े होने पर प्रदक्षिणा नहीं लगाएँ। ऐलक जी के लिये भी इच्छामि कहें।

भोजनशाला के पास गरम पानी से अपने पैर स्वच्छ धोकर महाराज को भोजन गृह में प्रवेश करने के लिये अनुरोध करें। नमोऽस्तु महाराज उच्च आसन में विराजमान होइये कहें।

आसन में विराजमान होने के बाद थाली में महाराज जी, माताजी तथा क्षुल्लक जी व ऐलक जी के पैर गरम पानी में धोकर गन्धोदक सिर में लगावें।

卐 पूजा विधि 卐

3
2 卐 24
5

आह्वान—मुनिराज चरण अत्र अवतर, अत्र अवतर, तिष्ठ, तिष्ठ, मम सन्निहितो भव भव वषट् स्वाहा। ऐसा कहकर पुष्प क्षेपण करें।

(1) जल–मुनिराज चरणेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

(2) चंदन—	,,	,,	संसार ताप	,, चदनं	,,	,,
(3) अक्षत (सफेद चावल)	,,		अक्षय पद प्राप्ताय	अक्षतान्	,,	,,
(4) पुष्प—मुनिराज	,,		कामबाण	,, पुष्पं	,,	,,
(5) नैवेद्यं—	,,	,,	क्षुधारोग	,, नैवेद्यं	,,	,,
(6) दीप—	,,	,,	मोहान्धकार	,, दीपं	,,	,,
(7) धूप—	,,	,,	अष्ट कर्म दहनाय	धूपं	,,	,,
(8) फल—	,,	,,	मोक्ष फल प्राप्ताय	फलं	,,	,,

अर्घ्यः—उदक, चन्दन, तन्दुल, पुष्पकैः चरु सुदीप सूधूप फलार्घकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले मम गृहे मुनिनाथमहं यजे॥
मुनिराज चरणेभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
शान्ति धारा, परिपुष्पाण्जलिम् क्षिपामि।

पूजा के बाद शान्ति धारा जल से करके पुष्पाण्जलि क्षेपण करें एवं पंचाग नमोऽस्तु करें। पूजा के बाद थाली एवं कटोरी में रोटी, दाल आदि परोसकर पहले दिखायें।

भोजन ग्रहण के लिए शुद्धि

हे स्वामिन्, नमोऽस्तु, मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है, अंजुलि छोडवाकर भोजन ग्रहण करें। (फिर नमोऽस्तु करें।) महाराज के अंजुलि त्याग करने के बाद हाथ धुलावें।

भोजन विधि—

महाराज के खड़े होने पर मंत्र बोलने के बाद पहले पानी दें। पानी के बाद दूध दें। दूध के बाद भोजन दें। भोजन के मध्य मध्य में थोड़ा पानी भी दें। दूध के बाद खट्टी चीज या खट्टी चीज के बाद दूध न दें। फलरस व फल के बाद पानी न दें। पानी के बाद फल या फलरस न दें।

चौका शुद्धि—

चौका प्रकाश युक्त हो, सूखा हो, जीवों से रहित हो, ऊपर स्वच्छ चंदोवा तना हो।

भोजन शुद्धि—

कुएँ से पानी छानकर लायें तथा उसी समय छन्ने की जीवाणी कुए में डालें तथा उसे गरम करें फिर उस पानी से भोजन बनावें। हाथ की चक्की से पिसा आटा, शुद्ध दूध, मर्यादित घी होना चाहिये।

आहार देने वालों की शुद्धि

पिण्ड शिद्ध—

विजातीय विवाह न हुआ हो, विधवा विवाह न हुआ हो। स्नान करके शुद्ध कपड़ा पहनकर भोजन दें, तथा पुरुष जनेऊ जरूर धारण करें। लिपस्टिक, नेल-पालिश, पाउडर न लगावें। दान देते समय काला कपड़ा, लाल कपड़ा न पहनें, रेशमी और गीला कपड़ा न पहनें।

सप्त व्यसन का त्याग

अंडा, मांस, मद्य, धूम्रपान, तम्बाकू का जीवन पर्यन्त त्याग दाता को करना चाहिये।

त्याग

आलू, लहसुन, मूली, गाजर, प्याज आदि जमीकन्द का तथा रात्रि भोजन, अशुद्ध भोजन, अशुद्ध पानी, होटल की चीजें, गोभी आदि का शक्ति के अनुसार त्याग करें। पानी छानकर पीवें, देव दर्शन नित्य करें, जनेऊ धारण करें।

आहार दान का फल

आत्म-विशुद्धि, धर्मप्रेम, गुरु-सेवा, लोभ की कमी, पाप-नाश, पुण्य-प्राप्ति, यश प्राप्ति, अन्त में मोक्ष-प्राप्ति।

भक्ष्याभक्ष्य की मर्यादा

	वर्षा ऋतु,	ग्रीष्म ऋतु,	शीत ऋतु
1. दलिया, रवा, आटा, मैदा, मिर्च (मसाला) लाई आदि कुटे व गर्म किये	3 दिन	5 दिन	7 दिन
2. खोआ, पेड़ा, बर्फी, लड्डू	1 दिन	1 दिन	1 दिन
3. पापड़, बड़ी, सेमियाँ, पुड़ी, पराठा, हलुआ, शाक, सेव, बूंदी, तेल आदि से तले पदार्थ आचार, मुरब्बा, दही, मठ्ठा	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
4. खिचड़ी, दाल, भात, कढ़ी, रोटी	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
5. बूरा	7 दिन	15 दिन	30 दिन
6. घी, तेल	1 वर्ष	1 वर्ष	1 वर्ष
7. सैंधा नमक (पिसा हुआ)	48 मिनिट	48 मिनिट	48 मिनिट
8. (प्रसूत) बकरी, भेड़ का दूध कब शुद्ध होता है।	8 दिन बाद	8 दिन बाद	8 दिन बाद
(प्रसूत) भैंस का दूध कब शुद्ध होता है।	15 दिन बाद	15 दिन बाद	15 दिन बाद
(प्रसूत) गाय का दूध कब शुद्ध होता है।	10 दिन बाद	10 दिन बाद	10 दिन बाद

22 अभक्ष्य

ओला, घोर, बड़ा, निशिभोजन, बहुबीजा बैंगन संधान।
बड़, पीपर, उमर, कठुमर, पाकर फल या होय अनजान॥
कन्दमूल, माटी, विष, आमिष, मधु माखन, अरु मदिरा पान।
फल अतितुच्छ, तुषार, चलित रस, ये बाइस अभक्ष बखान॥

उपाध्याय श्री कनक नन्दी द्वारा रचित ग्रन्थ

आपको जानकर हर्ष होगा कि जैन धर्म की वैज्ञानिकता, दार्शनिकता एवम् तत्वज्ञता से सभी वर्गों के परिचय हेतु—'धर्म दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन' का शुभारम्भ हो गया है। वर्तमान वैज्ञानिक युग की पीढ़ी, बुद्धिजीवी वर्ग एवं जैन-जैनेतर बन्धुओं की मानसिकता को दृष्टिगत कर रची गई सभी पुस्तकें आपको स्वयं अपने अन्तर्मन में उमड़ते प्रश्नों का ही उत्तर प्रतीत होगी।

उपाध्याय कनकनन्दी जी की लेखनी से भूगोल, विज्ञान, भौतिक विज्ञान, जीव-विज्ञान, राजनीति, रसायन विज्ञान, खगोल, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, आयुर्वेद, मनोविज्ञान, ऋद्धि, सिद्धि, स्वप्न विज्ञान, ध्यान-योग, इतिहासादि सभी को विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया गया है।

प्रकाशित पुस्तकें :

(1) धर्म विज्ञान बिन्दु (मूल्य 10·00 रु०)
(2) धर्म ज्ञान एवं विज्ञान (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य 15·00 रु०)
(3) भाग्य एवं पुरुषार्थ (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य स्वाध्याय, 5·00 रु०)
(4) संस्कार (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य स्वाध्याय 2·00 रु०)
(5) दिगम्बर जैन साधु का नग्नत्व एवं केशलोंच (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य स्वाध्याय 2·00 रु०)
(6) व्यसन का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण (हिन्दी व अंग्रेजी) (मूल्य 15·00 रु०)
(7) जिनार्चना पुष्प–I एवं II (मूल्य 21·00 रु० प्रत्येक)
(8) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पुष्प–I (मूल्य स्वाध्याय, 11·00 रु०)
(9) पुण्य पाप मीमांसा (मूल्य 10·00 रु०)
(10) निमित्त उत्पादन मीमांसा (मूल्य 5·00 रु०)
(11) धर्म दर्शन एवं विज्ञान (मूल्य 20·00 रु०)
(12) क्रांति के अग्रदूत (मूल्य स्वाध्याय, 10·00 रु०)
(13) लेश्या-मनोविज्ञान (मूल्य 6·00 रु०)
(14) ऋषभ पुत्र भरत से भारत (मूल्य 10·00 रु०)
(15) ध्यान का एक वैज्ञानिक विश्लेषण (मूल्य 11·00 रु०)
(16) अनेकान्त दर्शन (मूल्य 12·00 रु०)

(17) कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विवेचन (मूल्य 21·00 रु०)
(18) युग निर्माता ऋषभदेव (मूल्य-स्वाध्याय, 11·00 रु०)
(19) विश्व शान्ति के अमोघ उपाय (मूल्य-स्वाध्याय)
(20) मनन एवं प्रवचन (मूल्य-स्वाध्याय)
(21) अहिंसामृतम् (मूल्य 7·00 रु०)
(22) विनय मोक्षद्वार (मूल्य-स्वाध्याय, 3·00 रु०)
(23) क्षमा वीरस्य भूषणम् (मूल्य 10·00 रु०)
(24) संगठन के सूत्र (मूल्य 8·00 रु०)
(25) अतिमानवीय शक्ति (मूल्य 21·00 रु०)
(26) मन्त्र विज्ञान (मूल्य 10·00 रु०)
(27) Philosophy of Scientific Religion (Rs. 15·00)
(28) धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान पुष्प–II (मूल्य 11·00 रु०)
(29) भगवान् महावीर और उनका दिव्य संदेश

प्रकाशनाधीन पुस्तकें :

(1) विश्व विज्ञान रहस्य (मूल्य 75·00 रु०)

प्रकाशन की ओर से साधु-संघों, स्वाध्याय शालाओं, धार्मिक शिक्षण संस्थाओं, शोधरत छात्रों, असमर्थ भाई-बहनों को पुस्तकें निःशुल्क भेंट की जाती हैं। पुस्तकालय, वाचनालय शिक्षण संस्थाओं के लिए 25% छूट से शास्त्र दिये जायेंगे। सामान्य स्वाध्याय प्रेमियों के लिए 10% छूट है, डाक खर्च अलग से है। आजीवन सदस्य 1101·00 रु०।

निवेदक

धर्म-दर्शन विज्ञान शोध प्रकाशन

बड़ौत–250611 मेरठ (उ० प्र०)

आजीवन सदस्य

1. श्री मिश्रीलाल निर्मल कुमार बाकलीवाल, फैन्सी बाजार, गुहाटी (आसाम)।
2. श्री नरेन्द्र कुमार जैन सर्राफ, गाँधी चौक, बड़ौत।
3. श्री जगदीश प्रसाद जैन, अबुपुरा, मुजफ्फरनगर।
4. श्री अशोक कुमार जैन एडवोकेट, 39 प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर।
5. सौ० डॉ० सूरजमुखी जैन, 35 इमामबाड़ा, मुजफ्फरनगर।
6. कु० रेणु जैन (बी० ए०) 203 कृष्णापुरी, मुजफ्फरनगर।
7. कु० सोनिया जैन, 183/1 कृष्णापुरी, मुजफ्फरनगर।
8. श्री सतीशचन्द, आनन्द कुमार जैन, खट्टर वाले, बड़ौत।
9. सौ० संध्या जैन, मौ० पार्श्वनाथ, मुजफ्फरनगर।
10. श्रीमती नलिनी जैन (एम० फिल), मुजफ्फरनगर।
11. श्री विनोद कुमार जैन, कचहरी रोड, मुजफ्फरनगर।
12. श्री प्रभात कुमार जैन (एम० एस-सी, रसायन प्रवक्ता) 48, कुंजगली, मुजफ्फरनगर।
13. श्री गुणपाल जैन, 87/1 कुन्दनपुरा, मुजफ्फरनगर।
14. श्री नेमचन्द जैन 'नेम भवन' 7 प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर।
15. श्री सतीशचन्द जैन (सी० ए०) 506, संजय मार्ग, पटेल नगर, मुजफ्फरनगर।
16. श्री प्रवीण कुमार जैन, मुजफ्फरनगर।
17. श्री राजीव जैन, बी० एस-सी०, जैन मैडीकल स्टोर, बड़ौत।
18. श्री राजेश कुमार जैन, 3/721, गांधी चौक, बड़ौत।
19. श्री अनिल कुमार जैन, अनिल इन्डस्ट्रीज, बड़ौत।
20. श्रीमति प्रेमलता जैन धर्मपत्नि, श्री सुशीलचन्द जैन, बड़ौत।
21. कु० संगीता जैन, बड़ौत।
22. श्री सुमत प्रसाद प्रदीप कुमार जैन, देहली।
23. श्री चन्दरभान कुमार, सुरेन्द्र कुमार जैन, पलवल।
24. श्री कुंजीलाल अशोक कुमार जैन, भगवान महावीर बाजार, पलवल।
25. श्री धनपाल सिंह सुरेन्द्र कुमार जैन, जैन ब्रदर्स, जी० टी० रोड़, पलवल।
26. श्री श्रीचन्द जैन, जैन खादी भण्डार, बुलन्दशहर।
27. श्री रमेश ए शाह, बम्बई।

28. श्री मूलचन्द पटवारी, कांमा ।
29. श्री प्रद्युमन कुमार जैन, 52 सैक्टर, 15-A फरीदाबाद ।
30. श्रीमति कान्ती देवी जैन धर्मपत्नि श्री सुल्तान सिंह जैन, 37-भोगल रोड़, देहली ।
31. बिजेन्द्र चन्द्र जैन, C-1245 FDA, नई देहली ।
32. श्री शुभचन्द्र जैन, जैन खादी भण्डार, पलवल, हरियाणा ।
33. सौभाग्यवती रेवु जैन धर्मपत्नी श्री प्रवीण कुमार जैन, B-2/140 सफदर-जंगएनक्लेव, नई दिल्ली ।
34. Dr. Satya Prakash Jain, B-2/22 Shopping Center Safdarjungenclave, New Delhi.
35. D. C. Jain Nirmala Jain, A-2/138 Safdarjungenclave, New Delhi.

1. प्रथम आवृत्ति – 1990 प्रतियाँ 2200 हिन्दी (मुजफ्फरनगर)
2. द्वितीय आवृत्ति – 1990 प्रतियाँ 1100 हिन्दी (,,)
3. तृतीय आवृत्ति – 1990 प्रतियाँ 1100 इंगलिश (,,)
4. चतुर्थ आवृत्ति – 1990 प्रतियाँ 1100 हिन्दी (,,)
5. पंचम आवृत्ति – 1990 प्रतियाँ 1100 इंगलिश (,,)
6. षष्ठम आवृत्ति – 1900 प्रतियाँ 2200 हिन्दी (,,)
7. सप्तम् आवृत्ति – 1991 प्रतियाँ 5000 हिन्दी (पलवल)

मुद्रक : प्रैसीडेण्ट प्रेस, 90 विवेकानन्द पथ, मेरठ कैन्ट ।
दूरभाष : 76708, 73143